विश्व बैंक समर्थित ग्रीन इन्डिया मिशन के अंतर्गत मध्यप्रदेश वन विभाग द्वारा क्रियान्वयन

इकोसिस्टम सर्विस इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट

मध्यप्रदेश में पाए जाने वाले कुछ प्रमुख औषधीय/लघु–वनोपज पौधों के विनाश–विहीन विदोहन की विधियाँ

वन अधिकारियों के लिये

ग्रीन इंडिया मिशन

मध्यप्रदेश वन विभाग

प्रस्तावना

अत्याधिक एवं अनियंत्रित विदोहन से वन क्षेत्रों में लघुवनोपज/औषधीय एवं सुगंधित पौध वाली जैव विविधता का निरन्तर ह्रास हो रहा है, जिसके फलस्वरूप वनोपज पर आधारित वनवासियों की आय में निरंतर कमी हो रही है। अन्य समुचित आर्थिक विकल्प के अभाव में वनवासियों द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि किस तरह से उनकी जीविका चलती रहे। कृषि तथा संबंधित कार्यों से उन्हें बमुश्किल वर्ष में 100 दिनों का ही कार्य मिल पाता है। वनोंपज के संग्रहण एवं विपणन से उन्हें लगभग 150 दिनों का कार्य मिलता था और उससे उनकी घरेलू आय के लगभग 50 प्रतिशत की पूर्ति हो जाती थी। अब जबकि वनोपज देने वाली जैव विविधता का लगातार ह्रास हो रहा है तब उनके लिये एक विषम आर्थिक परिस्थिति का निर्माण हो रहा है। यह कमी मुख्य रूप से तो अत्यधिक एवं विनाशहीन विदोहन से आई है परन्तु आज की परिस्थिति में जलवायु परिवर्तन के कारण भी जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना को नकारा नही जा सकता है।

जहाँ एक ओर आयुर्वेद पर आधारित प्रयोगशालाओं तथा औषधी निर्माताओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी तरफ इनके निर्माण में प्रयुक्त होने वाली वनोपज की घटती उपलब्धता के बावजूद किस प्रकार जड़ी-बूटी आधारित औषधियों के निर्माण में लगने वाले कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है, यह आयुष मंत्रालय, भारत सरकार एवं अन्य सबंधितों के सोंचने की बात है। पिछले लगभग दो दशकों में भारत सरकार, आयुष मंत्रालय के अथक प्रयासों से औषधीय पौधों की खेती को बढ़ाने की परियोजना पूरे देश में लागू की गई। इस परियोजना का अभिप्राय यह था कि इससे प्राकृतिक वन क्षेत्रों के विकल्प के रूप में कच्चे माल की आवश्यकता की पूर्ति हो। साथ ही इनकी खेती से कृषकों की आमदनी बढ़ने तथा वन क्षेत्रों को अक्षुण्ण बनाये रखने में भी सहायता मिले। वास्तव में यह एक अभिनव योजना थी और इसके माध्यम से काफी हद तक कच्चे माल के लिये वनों पर निर्भरता कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास भारत सरकार के आयुष मंत्रालय द्वारा किया गया था। अभी तक जो ऑकड़े प्राप्त हो रहे है उनके अनुसार कुछ प्रजातियों की खेती से प्राप्त उपज का दवा बनाने में बड़े पैमाने पर उपयोग हो रहा है, परंतु बहुत सी ऐसी प्रजातियाँ है जिनका वन क्षेत्रों से ही विदोहन हो रहा हैं। एक और तथ्य है कि दवा बनाने वाली ईकाईयों की ओर से भी यह प्रयास किया जाता है कि उन्हें अधिक से अधिक माल वन क्षेत्रों से ही प्राप्त हो क्योंकि वह सस्ता एवं उनके अनुसार अधिक असरदार होता है। यह कहाँ तक तर्क संगत है इसके लिये अनुसंधान की आवश्यकता है।

वन क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन का भी बड़ा प्रभाव देखने को मिल रहा हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि फसलें लगातार खराब हो रही है। जिससे वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी एवं अन्य गरीब तबके के लोग जो लघुवनोपज के एकत्रिकरण से कुछ हद तक (20-50 प्रतिशत) घर का खर्च चलाते थे अब वन क्षेत्रों पर ही अपनी आजीविका के लिये निर्भर हो गये है। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उपज वर्ष दर वर्ष घट रही है। कभी अल्पवर्षा, अत्याधिक वर्षा या बड़े अंतराल के बाद वर्षा खेती के लिए हानिकारक है क्योंकि सिँचाई का क्षेत्र बहुत धीमें गति से बढ़ रहा है। बहुत से आदिवासी जिलों में सिचाँई का प्रतिशत नगण्य है। इससे जैव-विविधता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ रहा है। जैव-विविधता के ह्रास होने से वन क्षेत्रों में जो पारिस्थितिकीय संतुलन था वह बिगड़ रहा है और इससे ना केवल वनक्षेत्र उजड़ रहे हैं बल्कि उसका प्रभाव खेती पर भी हो रहा है। अतः अब जो आय खेती से हो रही थी वह घट रही है और वनक्षत्रों के उजड़ने के कारण लघुवनोपज की मात्रा भी घटती जा रही है क्योंकि विनाशकारी विदोहन और पुनरोत्पादन की कमी से प्रतिवर्ष लघुवनोपज का एकत्रीकरण घटता जा रहा है।

यह देखा जा रहा है कि छोटे व्यापारियों तथा बिचौलियों द्वारा प्रायः संग्राहकों को अपरिपक्व तथा अत्याधिक विदोहन के लिये प्रेरित किया जाता है। जैसा उपर बताया गया है कि आदिवासी तथा अन्य संग्राहक जिसमें महिलाएँ एवं बच्चे लगभग 80 प्रतिशत होते है बिना अन्य आर्थिक विकल्प के वनों से विनाशयुक्त औषधीय वनोपज लाने के लिये विवश हो जाते हैं। इसको किस तरह से विनाश विहीन बनाया जाये, वन क्षेत्रों में पुनरोत्पादन को बढ़ाया जाये तथा संग्राहकों को प्रशिक्षण के माध्यम से सक्षम बनाया जाये कि वे बिचौलियां के जाल में न फँसकर सही समय पर परिपक्व तथा विनाश विहीन विदोहन करें। अपने कच्चे माल को विभिन्न विधियों से (धोना, सुखाना, ग्रेडिंग, पावड़रिंग इत्यादि) वे एकत्रित वनोपज को अधिक मूल्यवान बना सकते है तथा एक सामूहिक विपणन विधि से मोल-भाव करने के लिये सक्षम होकर अपने उपज का सही एवं प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य प्राप्त कर सकते है। आज ग्रामीण संग्राहकों को विभिन्न तकनीकी तथा सामाजिक बदलावों से सक्षम बनाना है जिससे वे अपने आस-पास के वन क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनोपज का सही रखरखाव तथा वैज्ञानिक विदोहन कर सके। जैसे-जैसे उनके समक्ष कठिन आर्थिक परिस्थितियाँ निर्मित हो रही है उनमें इन परिवर्तनों को जानने एवं सीखने के लिये अधिक रूचि पैदा हो रही है।

रमेश कुमार गुप्ता
भा.व.से.
प्रधान मुख्य वन संरक्षक एवं
वन बल प्रमुख, मध्यप्रदेश

Ramesh Kumar Gupta
I.F.S.
Principal Chief Conservator of Forests &
Head of Forest Force, Madhya Pradesh

मध्यप्रदेश वन विभाग
कार्यालय प्रधान मुख्य वन संरक्षक एवं वन बल प्रमुख म0प्र0
प्रथम तल, सतपुड़ा, भवन, भोपाल - 462004

अ.शा.प.क्र./**Do.No.** .....

दिनांक/**Date** .....

प्राक्कथन

विश्व बैंक के द्वारा समर्थित **इको सिस्टम सर्विसेस इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट (ESIP)** के तहत वनों की पारिस्थितिकीय, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों को सुदृढ़ करने के लिये यह परियोजना अन्य राज्यों के साथ–साथ मध्य प्रदेश में भी चलाई जा रही है। मध्यप्रदेश में आदिवासियों की अधिकतम संख्या वनों पर निर्भर है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में आदिवासियों की संख्या 18% है, जबकि मध्यप्रदेश में इनकी संख्या राज्य की जनसंख्या का 21.1% है इस प्रकार मध्यप्रदेश जनजातीय बाहुल्य का प्रदेश माना जाता है। हम जानते है कि मानव जीवन पूर्णतः प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता है। उसमें आजीविका से जुड़ी बात हो या जीवनदायिनी ऑक्सीजन की। जलवायु के परिवर्तन के कारण भी वनों में व्याप्त जैव विविधता खत्म होती जा रही है। वनों के आस–पास रहने वाले विभिन्न समुदायों, आदिवासी एवं भूमिहीन मजदूरों की आजीविका का मुख्य स्त्रोंत वनों से मिलने वाली लघुवनोपज तथा औषधीय पौधों पर निर्भर है।

ग्रीन इन्डिया मिशन के क्रियान्वयन हेतु **इको सिस्टम सर्विस इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट** के अंतर्गत संवहनीय विदोहन की तकनीकी विधि एवं संरक्षण के लिये कुल 18 जिलों को चिन्हांकित किया गया है जहाँ ग्रीन इंडिया मिशन का कार्य चलाया जा रहा है। इनमें 03 वनमंडलों क्रमशः सीहोर, होशंगाबाद एवं उत्तर बैतूल वनमंडल में वनों की पारिस्थिकीय सेवाओं को सुदृढ करने के लिये लघुवनोपज पर आधारित एक संवहनीय वन प्रबंधन का कार्यान्वयन होना है और यह कार्य मध्यप्रदेश के वन विभाग, द्वारा **सोसायटी फॉर रिसोर्स प्लानिंग डेवलपमेंट एवं रिसर्च, भोपाल** तथा **मध्यप्रदेश विज्ञान सभा** को संयुक्त रूप से सौंपा गया है। इसमें लघुवनोपज के विनाशविहीन विदोहन के लिये एक वैज्ञानिक रूपरेखा तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य समाहित है जो संवहनीय वन प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

अत्यधिक एवं अनियंत्रित विदोहन से वन क्षेत्रों में लघुवनोपज/औषधीय एवं सुगंधित पौध वाली जैव विविधता का निरन्तर ह्रास हो रहा है, जिसके फलस्वरूप वनोंपज पर आधारित वनवासियों की आय में निरंतर कमी आ रही है। अन्य समुचित आर्थिक विकल्प के अभाव में वनवासियों द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि किस तरह से उनकी जीविका चलती रहे। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उन पर आधारित वनवासी समुदायों को प्रशिक्षण के माध्यम से सक्षम बनाया जाये कि वे लघुवनोपज संसाधनों का सही विधि से विदोहन एवं उपयोग करें, जिससे वनों का ह्रास न हो और इन लघुवनोपजों की सतत् उपलब्धता वन क्षेत्रों में बनी रहे। उल्लेखनीय है कि, यह वनोपज न केवल वर्तमान पीढी के लिये है बल्कि आने वाली पीढ़ीयों के लिये भी है।

आज संग्राहकों को विभिन्न तकनीकी तथा सामाजिक बदलावों से सक्षम बनाना है जिससे वे अपने आस–पास के वन क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनोपज का सही रख–रखाव तथा वैज्ञानिक विदोहन कर सके। जैसे–जैसे उनके समक्ष कठिन आर्थिक परिस्थितियाँ निर्मित हो रही है उनमें इन परिवर्तनों को जानने एवं सीखने के लिये अधिक रूचि पैदा हो रही है। संग्राहकों को संवहनीय विदोहन, मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण से जुड़ी इन्हीं महत्वपूर्ण जानकारी से अवगत कराने हेतू इस पुस्तिका को बनाया गया है जिससे संग्राहक अपनी आजीविका का स्तर पहले से अच्छा कर सकेंगे। इस पुस्तिका को संग्राहक एवं वनाधिकारियों को शिक्षित करने एवं जागरुक करने के उद्देश्य से तैयार किया गया है।

मैं आशा करता हूँ कि संवहनीय विदोहन प्रोटोकॉल पर निर्मित साहित्य वरिष्ठ वन अधिकारियों को अपने क्षेत्र के अधिकारियों को एवं समुदाय को विशेष रूप से इकट्ठा करने तथा जिम्मेदार प्रबंधन और प्रथाओं का पालन करने के लिए राजी करने में सहायक होगा ताकि राज्य को देश में बड़े पैमाने पर जैव–विविधता की समृद्धि के सबंध मे समुदायों के लाभ के लिए जगह का गौरव प्राप्त हो। इन संसाधनों की निरंतरता हरित भारत मिशन के लिए महत्वपूर्ण है। मैं इस उपयोगी प्रकाशन को प्रकाशित करने में परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी (एसआरपीडीआर) और ग्रीन इंडिया मिशन के अपर प्रधान मुख्य वन संरक्षक के प्रयासों की सराहना करना चाहता हूँ।

दिनांक: 03.01.2022

Ramesh

(रमेश कुमार गुप्ता)

के. रमन, भा.व.से.
अपर प्रधान मुख्य वन संरक्षक (ग्रीन इंडिया मिशन)
मध्यप्रदेश, भोपाल

K. Raman, I.F.S.
Addl. Principal Chief Conservator of Forest
(Green India Mission) Madhya Pradesh, Bhopal

मध्यप्रदेश वन विभाग
कार्यालय प्रधान मुख्य वन संरक्षक एवं वन बल प्रमुख, मध्यप्रदेश
(कक्ष–ग्रीन इंडिया मिशन)
अपर बेसमेंट, बी–विंग, सतपुड़ा भवन, भोपाल – 462004

अ.शा.प.क्र. / Do.No.----------

दिनांक / Date ----------

प्राक्कथन

ग्रीन इंडिया मिशन जलवायु परिवर्तन राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) के अंतर्गत राष्ट्रीय मिशनों में से एक मिशन है। यह जाना गया है कि जलवायु परिवर्तन की घटना देश के प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों के वितरण, प्रकार और गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं। **NAPCC** प्राकृतिक संसाधनों के विकास के साथ साथ उनसे संबंधित के विकास की ओर ध्यान केन्द्रित कर उनके बीच संबंधों की पहचान करता है। वन क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन का भी बड़ा प्रभाव देखने को मिल रहा हैं। पारिस्थितिक तंत्र में कृषि भूमि की मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने और एक स्थायी रूप से प्रबंधित करने के लिए जैव विविधता महत्वपूर्ण है। जलवायु परिस्थितियाँ, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, वन के पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करती हैं। ग्रीन इंडिया मिशन जलवायु अनुकूलन एवं शमन के संदर्भ में वनों एवं वनों के आसपास रहने वालों की आजीविका के विकास एवं पारिस्थितिकी तंत्र को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से कार्य कर रहा है।

मिशन अंतर्गत क्रियान्वित ईको–सिस्टम सर्विसेस इंप्रूवमेंट प्रोजेक्ट चयनित क्षेत्रों के समग्र विकास एवं उपचार के लिये एक अनूठी रणनीति की परिकल्पना करता है जिसका उद्देश्य वनों के समग्र विकास, बहाली एवं वन आश्रित समुदायों के वैकल्पिक एवं वन आधारित आजीविका के साधनों को बढ़ाना है। इसके साथ साथ वन आधरित समुदायों की क्षमता का निर्माण एवं अन्य आदिवासी और गरीब परिवारों को आगे बढ़ाना है।

आदिवासी एवं वनग्रामों में रहने वाले लोगों की आजीविका का लगभग 30% हिस्सा लघुवनोपज से आता है। जलवायु परिवर्तन के कारण फसलें लगातार खराब हो रही हैं जिससे वन एवं वनक्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी एवं अन्य गरीब तबके के लोग आजीविका के लिये लघुवनोपज पर निर्भर होते जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उपज दर घट रही है। अल्पवर्षा, अत्यधिक वर्षा या बड़े अंतराल के बाद वर्षा खेती के लिये हानिकारक है क्योंकि सिंचाई का क्षेत्र धीमी गति से बढ़ रहा है एवं बहुत से आदिवासी जिलों में सिंचाई का प्रतिशत नगण्य है। इससे जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जैवविविधता के ह्रास से वनक्षेत्रों का पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ रहा है और इससे न केवल वनक्षेत्र उजड़ रहे हैं बल्कि कृषि पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। परिणाम स्वरूप कृषि से होने वाली आय घट रही है एवं वनक्षेत्रों के विनाशकारी विदोहन एवं पुनरूत्पादन की कमी से प्रतिवर्ष लघु वनोपज की उपलब्धता एवं संग्रहण में कमी होती जा रही है।

जलवायु परिवर्तन के कारण असमय वर्षा, अल्प वर्षा एवं बडे अंतराल के बाद वर्षा के कारण फसल के खराब होने एवं अल्प उत्पादन के परिणामस्वरूप लघु वनोपज का उसकी क्षमता से अधिक विदोहन किया जा रहा है। इस दबाव के कारण वन संसाधनों में भारी गिरावट आ रही है जिससे कई प्रजातियां IUCN रेड लिस्टिंग (आर.ई.टी– दुर्लभ, लुप्तप्राय और संकटग्रस्त) में आती जा रही है। दूसरी ओर जैवविविधता के विनाश का वन पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है जिसके लिये उनकी बहाली पर गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। इसी संदर्भ में मध्यप्रदेश वन विभाग की ग्रीन इंडिया मिशन शाखा द्वारा विश्व बैंक से सहायता प्राप्त ईको सिस्टम सर्विसेस इंप्रूवमेंट प्रोजेक्ट के अंतर्गत चयनित जिलों में लघुवनोपज के लिये संवहनीय विदोहन प्रोटोकाल एवं मूल्य संवर्धन और विकास का कार्य **सोसायटी फॉर रिसोर्स प्लानिंग डेवलपमेंट एवं रिसर्च, भोपाल तथा मध्यप्रदेश विज्ञान सभा** को सौंपा गया है।

मुझे यह बताते हुये खुशी हो रही है कि विभिन्न हितधारकों की आवश्यकता को पूरा करने के लिये इन जिलों की 25 सबसे अधिक एकत्र की जाने वाली लघुवनोपज प्रजातियों के विवरण वाला एक प्रकाशन हिन्दी और अंग्रेजी में तैयार किया गया है। उम्मीद है कि यह उपयोग कर्ताओं के लिये संवहनीय विदोहन प्रोटाकाल का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिये उपयोगी होगा। लघु वनोपज का उत्तरदाई प्रबंधन संग्रह कर्ताओं पर प्रतिबंध लगाते हुये प्रतीत हो सकती हैं और वार्षिक संग्रह को प्रभावित भी कर सकती हैं लेकिन अंततः प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन के माध्यम से नये उत्पादों को विकसित करने में संग्राहकों की भागीदारी से उनकी आर्थिक स्थिति में महती सुधार हो सकेगा।

दिनांक 03.01.2022

(के. रमन)

M.P. Forest Department, O/o Principal Chief Conservator of Forest & Head of Forest Force, Madhya Pradesh
(Wing-Green India Mission)
Upper Basement, B-wing, Satpura Bhawan, Bhopal-462004, Tel.:(Office) 0755-2552401
E-Mail : apccfgim@mp.gov.in, Website : www.mpforest.gov.in

आज से लगभग 25 वर्ष पहले वन क्षेत्रों के नीचे स्थित कृषि क्षेत्र को पानी का बहाव मिलता रहता था। यह टिकाऊ वन प्रबंधन के कारण हो रहा था। जैसे-जैसे वन क्षेत्र उजड़ते गये पानी का बहाव टूटता गया। परिणाम स्वरूप खेती को भी नुकसान हुआ। यदि औषधीय पौधों की देखरेख करके उनका पूर्नरोत्पादन बढ़ाया जाये तो यह पानी का बहाव पुनः स्थापित किया जा सकता है। इसके लिये संस्था ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्वीकृत परियोजना की सहायता से पायलट रूप में डिण्डोरी एवं श्योपुर जिलों में 50 से अधिक महिला स्व-सहायता समूहों का गठन कर 50,000 से अधिक औषधीय पौधों का संरक्षण एवं संवर्धन करने का प्रयास पिछले 3 वर्षों में किया है। यह समूह परियोजना समाप्त होने के बाद भी अभी सक्रिय है। इन्हें समय-समय पर अन्य परियोजनाओं के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जा रहा है जिससे वे वन क्षेत्रों में पाये जाने वाले पुर्नरोत्पादन को ए.एन.आर.विधि से बढ़ा सके। विश्व बैंक के द्वारा समर्थित इकोसिस्टम सर्विसेज इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट ग्रीन इंन्डिया मिशन के तहत वनों की पारिस्थितिकीय, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों को सुदृण करने के लिये परियोजना मध्य प्रदेश में चलाई जा रही है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिये वृक्षारोपण, विगडे वनों का सुधार, भूमि एवं जलसंरक्षण तथा उन पर आधारित जनसंख्या की कार्यक्षमता एवं कुशलता को बढ़ाने इत्यादि का एक अभिनव प्रयास किया गया है। ग्रीन इंन्डिया मिशन के क्रियान्वयन हेतु कुल 18 जिलों को चिन्हांकित किया गया है। जहाँ ग्रीन इंन्डिया मिशन का कार्य चलाया जा रहा है। इनमें 03 वनमंडलों क्रमशः सीहोर, होशंगाबाद एवं उत्तर बैतुल वनमंडल में वनों की पारिस्थितिकीय सेवाओं को सुदृढ़ करने के लिये लघुवनोपज पर आधारित एक जिम्मेदार प्रबंधन एवं उपयोग योजना का कार्यान्वयन होना है और यह कार्य सोसायटी फॉर रिसोर्स प्लानिंग डेवलपमेंट एवं रिसर्च, भोपाल तथा मध्यप्रदेश विज्ञान सभा के संयुक्त तत्वाधान में मध्यप्रदेश के वन विभाग के ग्रीन इंण्डिया मिशन द्वारा सौपा गया है। इसमें लघुवनोपज के विनाशविहीन विदोहन के लिये एक वैज्ञानिक रूपरेखा तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य इसमें समाहित है। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उन पर आधारित जनसंख्या-वनवासियों को इस तरह से प्रशिक्षण के माध्यम से सक्षम बनाया जाये कि वे लघुवनोपज संसाधनों का सही ढंग से विदोहन एवं उपयोग करें जिससे वनों की एकीकृतता कम न हो और इन लघुवनोपजों की सतत् उपलब्धता वन क्षेत्रों में बनी रहे। उल्लेखनीय है कि यह वनोपज न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिये है बल्कि आने वाली पीढ़ी के लिये भी है। लघुवनोपज विदोहन में संलग्न महिलाएँ तथा बच्चें इन उद्देश्यों के साथ वनोपज का विदोहन करे की उसकी सतता बनी रहे और उन्हें अधिक से अधिक लाभ मिले इसलिये प्रशिक्षण के द्वारा उनको समर्थ किया जाना चाहिए। यह पुस्तिका न केवल संग्राहको के लिये बल्कि वनाधिकारियों के लिये भी उपयोगी निर्देश पुस्तिका को इसे ध्यान में रखकर तैयार किया गया है।

धन्यवाद!

दिनांकः- 15 अगस्त, 2021

डॉ. राम प्रसाद
सोसायटी फॉर रिसोर्स प्लानिंग,
डेवलपमेंट तथा रिसर्च, भोपाल

विषय-सूची

प्रस्तावना			**पृष्ठ क्रमांक**
आभार			08
भाग 'अ'			09
अध्याय 1			10
अध्याय 2			13
भाग 'ब'			17
लघुवनोपज की मध्य प्रदेश के वनों में पारिस्थतिक को दर्शाते चिन्ह			18
क्र.सं	**फल उत्पादक प्रजातियाँ**		
1	आँवला	(एम्बिलिका ऑफिसेनेलिस)	19
2	बेल	(इगेल मारमेलोस)	23
3	अचार/चिरोंजी	(बुक्नेनिया लान्जान)	26
4	हर्रा, हरीतकी	(टर्मिनेलिया चेब्युला)	31
5	बहेड़ा	(टर्मिनेलिया बेलरिका)	34
6	महुवा	(मधुका लोंगीफॉलिया)	37
7	इंद्रजो	(होलर्रहिना पुबेसेन्स)	41
8	वायविडंग	(ऐम्बीलिया राइबीज)	44
9	सीताफल	(ऐनोना एसक्यूमोसा)	46
10	किवांच	(मुकुना प्रुरियंस)	49
11	मालकांगनी	(सेलास्ट्रस पैनिकुलाटस)	52
जड़ वाले पौधे			
12	सतावर	(ऐस्पेरेगस रेसिमोसस)	54
13	सफेद मूसली	(क्लोरोफाइटम बोरीविलेनम)	57
14	नागरमोंथा	(सायप्रस रोटन्ड्स)	60
गोंद उत्पादन करने वाले पौधे			
15	सलई	(बोस्वेलिया सेरेटा)	63
16	कुल्लू	(स्टरकुलिया यूरेंस)	67
17	धावड़ा	(एनोजिसस लैटिफोलया)	70
18	बबूल	(आकास्या नीलोटिका)	73
19	गुग्गुल	(कॉमिफोरा विग्टियाई)	76
संपूर्ण पौधा			
20	अश्वगंधा	(विथानिया सोमनिफेरा)	79
21	गिलोय	(टिनोस्पोरा कोड्रफोलिया)	81
22	गुड़मार	(जिमनेमा सिल्वेस्टेरे)	84
23	कालमेघ	(एंड्रोग्राफिस पेनीकुलेटा)	87
24	कलिहारी	(ग्लोरियोसा सुपरबा)	89
25	वच	(एकोरस कैलेमस)	92

आभार

इस पुस्तिका में संकटाग्रस्त लघुवनोपज/औषधीय पौधों के विनाश विहीन विदोहन की तकनीक का विवरण सरल भाषा में दिया गया है। इन प्रजातियों के चार्ट भी बनाये गये है जिससे संग्राहक अच्छी तरह से बारीकियों को समझ सके। इन प्रजातियों का विवरण तैयार करने में बहुत से लोगों ने सहायता प्रदान की है। पिछले कुछ वर्षों में संस्था द्वारा (सोसायटी फॉर रिसोर्स प्लानिंग डेवलपमेंट तथा रिसर्च, भोपाल) राष्ट्रीय औषधीय पौध बोर्ड द्वारा प्रायोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम मध्यप्रदेश के विभिन्न वनमंडलों में आयोजित किया गया है। प्रशिक्षण के दौरान बहुत सारे सुझाव एवं अनुभव प्राप्त होते रहे है। इन सबको मिलाकर यह पुस्तिका तैयार की गई है।

इस प्रकार जिन लोगों ने अपनी बहुमूल्य सुझाव एवं प्रशिक्षण में भाग लिया संस्था उनकी आभारी है, क्योंकि उन्हीं लोगों से बहुत सी जानकारी मिली जो उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी को और अधिक समृद्ध किया। हमारी संस्था उन सभी के प्रयासों के लिये अत्यंत आभारी है। समय-समय पर वन क्षेत्रों में जो तथ्य मिलते है तथा जो सुझाव संग्राहकों तथा वन अधिकारियों से प्राप्त होते है उनका भी समावेश किया गया है। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति या अधिकारी को नाम से यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है। अतः उन सभी का आभार संस्था द्वारा एकजाई रूप से किया जा रहा है। भविष्य में जो भी जानकारी मिलेगी तथा जिसका उल्लेख पुस्तिका में करना आवश्यक होगा अवश्य किया जायेगा।

डॉ. राम प्रसाद
अध्यक्ष

भाग 'अ'
विनाशविहीन विदोहन से संबंधित पर्यावरणीय, आर्थिक एवं सामाजिक पहलू

Ecological, Social and Economic Dimension of Sustainable Harvesting of NTFPs

Prepared by
Society for Resource Planning Development and Research, Bhopal

अध्याय-01

परिचय

विगत वर्षों में (वर्ष 70 के दशक में) औषधीय पौधे/लघुवनोपज ग्रामीण आदिवासियों के लिये आजीविका के स्रोत के रूप में तथा राज्य सरकारों के लिए महत्वपूर्ण राजस्व के स्रोत के रूप में तेजी से पहचाना जाने लगा है। लघुवनोपज का संग्रह ग्रामीण समुदायों को विशेष रूप से वन आश्रित जनजातियों, भूमिहीन गरीबों को वर्ष भर रोजगार प्रदान करता है। एक अनुमान के तहत यह पाया गया है कि इस कार्य में लगभग 4 मिलियन व्यक्ति दिवस रोजगार पैदा होता हैं। भारत के योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार इसके कई गुना बढ़ने का अनुमान है। एक अन्य अध्ययन में पाया गया है कि वनों के समीप लगभग 170,000 गाँव में रहने वाले 147 मिलियन लोग, जिनमें से अधिकांश गरीब हैं, उनका अस्तित्व वन पर अत्यधिक निर्भर है। ऐसी स्थिति में जहाँ वनों पर बढ़ती निर्भरता के कारण वे धीरे-धीर उजड़ रहे है अर्थात वनों की स्थिति खराब होती जा रही है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि फसल बार-बार अनुउत्पादक हो रही है अथवा खराब होती जा रही है और इस कारण भी लघुवनोपज के एकत्रीकरण पर अधिक से अधिक दवाब पड़ रहा है। इससे लघुवनोपज की मात्रा एवं अत्याधिक एकत्र की जाने वाली प्रजातियों का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी जिनके घर की आमदनी में लघुवनोपज का 20-54 प्रतिशत की भागीदारी होती थी वह क्रमशः घटती जा रही है। यह तथ्य इस ओर इंगित करते है कि आने वाले समय में यदि प्राकृतिक वन क्षेत्रों में जिम्मेदारी पूर्वक निकासी से लघुवनोपजों का प्रबंधन एवं उपयोग सुनिश्चित नहीं किया गया तो शीध्र आने वाले समय (अगले 5-10 वर्षों की अवधि में ही) लघुवनोपज की बहुत सी प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर पहुंच जायेगीं। वन विभाग के द्वारा जहाँ एक ओर इन संसाधनों को योजनावद्ध तरीके से बढ़ाना है (वन क्षैत्र में उपलब्ध छोटी पौध को बचाना तथा बढ़ाना है। पुनरोत्पादन सहायक तकनीक (ए.एन.आर.) से वन संसाधनों का विकास वन क्षैत्रों में संभव है)। इन क्षेत्रों में वृक्षरोपण संभव नहीं है और छोटे-छोटे पौधों वाले प्रजातियों को खेती में लाना महंगा साबित होता है और उसके प्रायः अधिक कीमत होने के कारण औषधी निर्माता कई बार खेती वाली उपज को लेने में आनाकानी करते है। उनका सामान्य तर्क यही रहता है कि जंगल की औषधी निर्माण के लिये ज्यादा प्रभावकारी होता है। ऐसा कहा जाता है कि व्यापारी खेती की उपज के महंगे होने के कारण ही इस प्रकार के तर्क देते है। वन क्षेत्रों से एकत्र की गई लघुवनोपज व्यापारियों को सस्ते मूल्य पर मिल जाती है और यह भी खेती की तुलना में लाभदायक तर्क है। अब स्थिति बदल रही है और बहुत सी प्रजातियाँ धीरे-धीरे वनों से लुप्त होती जा रही हैं और कुछ प्रजातियां इतनी दूर-दूर पायीं जाती है कि उनका एकत्रीकरण संग्राहकों को कष्टमय एवं अधिक परिश्रम वाला अनुभव होता हैं।

दिनों दिन बढ़ती दवाओं, रंगों, सौंदर्य प्रसाधनों और सुगंध आदि के लिए प्राकृतिक उत्पादों के उपयोग के बढ़ते रूझान के कारण इन प्रजातियों की निकासी में वृद्धि हो रही है। पिछले तीन दशकों में दुनिया भर में जड़ी-बूटियों और हर्बल उत्पाद बाजारों में पर्याप्त वृद्धि देखी गई है। पिछले दशक के दौरान औषधीय पौधों के तेजी से बढ़ते निर्यात ने इन उत्पादों के साथ-साथ पारंपरिक भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली भी धीरे-धीरे दुनिया भर में रूचि पैदा कर ही है। आयुष मंत्रालय भारत सरकार द्वारा इस ओर अब अधिक ध्यान दिया जा रहा है कि भारतीय चिकित्सा पद्धति को विश्व के सभी देशों में इसके अच्छे गुणों तथा दवाओं के प्रति लाभकारी होने के बारे में प्रचारित किया जाये जिससे लोगों को भारतीय चिकित्सा पद्धति में भरोसा जगे और उससे देश को उचित आर्थिक लाभ भी मिल सके। यहाँ उल्लेखनीय है कि चीन के द्वारा इन औषधीयों तथा चीनी औषधी प्रणाली के निर्यात से 10 बिलियन डालर से अधिक की आय होती है। इसके विपरीत भारत द्वारा आयुष दवाईयों तथा सेवाओं के निर्यात से 1 बिलियन डालर से भी कम की राशि प्राप्त हो रही है। भारत के पास चीन की तुलना में अधिक जैव-विविधता प्राचीन स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान एवं उसके उपयोग से अधिक निर्यात की संभावना है।

भारत शासन के आयुष मंत्रालय द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से इसमें बढ़ोतरी के प्रयास किये जा रहे है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि भारतीय फार्मेसियों द्वारा उपयोग की जाने वाली कच्ची दवाओं में से 95 प्रतिशत औषधीय पौधे वन क्षेत्रों से निकाले जा रहे है (यद्यपि आयुष मंत्रालय के सूत्रों के अनुसार अब लगभग 20 प्रतिशत कच्चे माल की आपूर्ति औषधीय पौधों की खेती से आ रहा हैं) जो भी स्थिति हो यह सर्वमान्य है कि वन क्षेत्रों से अभी भी बड़ी मात्रा में औषधी पौधे अनियंत्रित रूप से निकाले जा रहे है। जैव-विविधता में इस प्रकार जो ह्रास हो रहा है उसको रोक पाना अत्यंत आवश्यक है जिससे पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखा जा सके। आज आवश्यकता इस बात की है कि रोजगार और जैव-विविधता संरक्षण में प्रर्याप्त सामंजस्य होना चाहिए। यही आदिवासियों एवं वनों के हित में है। इसके लिये औषधी निर्माताओं को भी उनके द्वारा बहुत सी प्रजातियों की खेती को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

दुनिया भर में लगभग 13 लाख पौधे पाए जाते हैं और लगभग 55000 औषधीय पौधों की प्रजातियां विश्व स्तर पर विभिन्न बीमारियों के लिए उपयोग की जाती हैं। भारत में असंख्य औषधीय पौधे हैं और लगभग 2000 पौधों का उपयोग आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी, आधुनिक दवाओं और अन्य स्वास्थ्य उत्पादों की तैयारी में किया जाता है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में औषधीय पौधों की बढ़ती मांग के कारण जंगली प्रजातियों के अस्तित्व का खतरा कई गुना बढ़ गया है, हालांकि इससे क्षेत्र के वनवासियों, आदिवासियों और ग्रामीणों के लिए लाखों मानव दिवस रोजगार पैदा होते हैं।

एक अनुमान के अनुसार 960 औषधीय पौधों की प्रजातियाँ व्यापार में है। भारत में उच्च व्यापार में 193 प्रजातियाँ है जिनकी वार्षिक आवश्यकता 100 मीट्रिक टन से अधिक है। 100 से अधिक प्रजातियाँ दुर्लभ, संकटापन्न एवं संकट ग्रस्त है। इन 19 प्रजातियों में से अधिक प्रजातियां उच्च माँग में है। उद्योगों द्वारा इन लघुवनोपज/औषधीय पौधों की बढती माँग के फलस्वरूप कुछ प्रजातियां या तो जंगलों के अंदरूनी हिस्सों में चली गई हैं या उनके पारिस्थितिकी तंत्र से गायब होने का खतरा बढ़ गया है। जबकि संरक्षण एजेंसियों द्वारा जंगली औषधीय पौधों/लघुवनोपज की स्थायी कटाई को बढ़ावा देने और सर्वोत्तम संग्रह प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए गंभीर प्रयास किए गए हैं। भारत में उपलब्ध दिशानिर्देश सामान्य हैं जो संग्राहकों को इस बारे में बहुत कम जानकारी प्रदान करते हैं कि कैसे, कब और कितना निकासी एवं संग्रह करना है। वे आम तौर पर आंशिक रूप से आर्थिक कठिनाईयों और कुछ अपने स्वयं के ज्ञान के आधार पर निकासी करते है। अकसर यह बाजार और अर्थव्यवस्था है जो स्थिरता के मुद्दे पर हावी हो जाती है। इसलिए औषधीय पौधों/लघुवनोपज की ऐसी महत्वपूर्ण प्रजातियों के लिए स्थायी निकासी/कटाई पद्धतियों की अनुपलब्धता उनकी खराब गुणवत्ता के कारणों में से एक है।

यूरोपीय और अमेरिकी बाजारों में प्रमाणित उत्पादों की मांग बढ़ रही है और भारत इन बाजारों में लघुवनोपज/औषधीय पौधों के प्रमुख निर्यातकों में से एक है। इसके उत्पाद को प्रमाणित करने की आवश्यकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। प्रमाणित उत्पादों की मांग यह सुनिश्चित करने के लिए वैज्ञानिक प्रमाणन प्रणाली की मांग करती है कि संसाधनों का निरंतर संवेदी प्रबंधन किया जाये जिससे उनके काटने की संभावना कम रहे। इस बढ़ती मांग के बावजूद, औषधीय पौधों को अभी भी देश में वन कार्य योजनाओं में उचित स्थान तो दिया गया है (कार्य आयोजना कोड 2014) परंतु क्षेत्रीय स्तर पर इसको और गंभीर रूप लागू करने के प्रयास किये जाने चाहिए। औषधीय पौधों के निकासी के साथ उनके प्रमाणीकरण का प्रयास ''क्वालिटी काउंसिल ऑफ इंडिया'' (QCI) भारत सरकार द्वारा आयुष मंत्रालय के तत्वाधान में संम्पादित किया जा रहा है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रमाणिकरण के पहले औषधीय पौधों के गुणवत्ता के लिये निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:-

1- वह स्थान जहाँ से पौधे एकत्र किये जाते है।

2- उस स्थान की जलवायु, मिट्टी, रहवास (हैबीटेट)।

3- असली कच्ची दवाओं, उसके संग्रह का उचित समय आदि के बारे में ज्ञान।

चूंकि वनवासियों को भुगतान की जाने वाली कीमत बहुत कम होती है इसलिए वे अपनी आय बढ़ाने के लिये प्रायः विनाशकारी तरीके अपनाते हैं। जंगली कटाई में एक महत्वपूर्ण कारक जड़ी-बूटियों के अच्छे संग्रह के लिए कुशल श्रम की अनुपलब्धता है। अप्रबंधित संग्रह प्रथाओं के परिणाम स्वरूप औषधीय पौधों की आबादी में कमी आती है और दवाओं के कम प्रभावी होने की घटना, आये दिन देखने को मिलती है। कुछ संकटग्रस्त औषधीय पौधों/लघुवनोपज की प्रजातियों के संग्रह पर भी प्रतिबंध है, जिन्हें जंगली स्रोतों से एकत्र किया गया है। इन प्रजातियों को प्रकृति में इन-सीटू संरक्षण और एक्स-सीटू खेती, और मौजूदा कानूनों के माध्यम से संरक्षित किया जाना चाहिए। हालांकि, अप्रबंधित और अनियंत्रित एकत्रीकरण ने जैवविविधता को काफी खतरा पैदा कर दिया है। इस प्रकार हितधारकों और सरकार को निकासी में स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए स्थायी निकासी प्रथाओं के तरीकों को विकसित करने के लिए गंभीर विचार करने के लिए बाध्य किया है। इसके संरक्षण और टिकाऊ प्रबंधन की चिंता को देखते हुए कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पौधों/ लघुवनोपज की प्रजातियों की सतत कटाई तकनीक पर एक मैनुअल तैयार किया गया है जिससे की वन विभाग के क्षेत्रीय अधिकारी एवं कर्मचारी समय-समय पर इस मैनुअल में दिये जा रहे निर्देशों एवं उपचारों का सही एवं सामयिक उपयोग करें। इस मैनुअल का यह भी एक उद्देश्य है कि विनाश विहीन विदोन से किस तरह से संवेदी प्रबंधन (सस्टेनेबल मैनेजमेंट) किया जाये। यह न केवल संग्राहकों के लिये आवश्यक है वरन वन क्षेत्र में कार्य करने वाले वन रक्षक, वनपाल एवं वनक्षत्रेपाल स्तर के अधिकारियों के लिये भी उतना ही आवश्यक है। कार्य आयोजना में इनके संवेदी प्रबंधन के बारे में कार्य आयोजना अधिकारी लिखते है। कार्य आयोजना प्रबंधन प्रतिवेदन सदैव उपलब्ध नहीं होता इसलिये यदि प्रत्येक फील्ड फारेस्टर इस मैनुअल को अपने साथ रखे तो वे संग्राहकों को

समय पर उचित मार्गदर्शन दे सकते हैं। सतत कटाई/निकासी के उद्देश्य

औषधीय पौधों की सतत कटाई/निकासी के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. स्थायी फसल के माध्यम से प्रजातियों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए
2. स्थानीय लोगों की आमदनी बढ़ाने के लिए
3. ज्यादातर लघुवनोपज/औषधीय पौधों के संग्रह में लगी महिलाओं और बच्चों (80 प्रतिशत से अधिक) के लिए कठिन परिश्रम को कम करना है।
4. प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए स्थानीय लोगों के बीच क्षमता निर्माण और बेहतर ''बाजार-पहुंच'' के लिए खुद को संगठित करना और लघुवनोपज/औषधीय पौधों की बिक्री में सही मध्यस्थता एवं प्रशिक्षण देकर उनके सही मूल्य दिलाने की कार्यवाही करना।
5. वन आश्रित समुदायों और कमजोर वर्गों का सामान्य कल्याण।

अध्याय-02

लघुवनोपज का विनाशविहीन विदोहन एवं संवहनीय प्रबंधन

देश के लगभग 30 करोड़ आबादी वन क्षेत्रों के आस-पास के गाँवों में निवास करती हैं। वैसे तो वनक्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों का मुख्य पेशा कृषि एवं भूमि से जुड़े अन्य स्त्रोत (पशुपालन,मत्स्य पालन, इत्यादि) पर निर्भर हैं, पर इनकी निर्भरता वनों पर ही काफी अधिक है। यह लोग वनों से जीवकोपार्जन के लिये लघुवनोपज एकत्र करके उसके कुछ भाग (10-25 प्रतिशत) का उपयोग स्वंय करते हैं और अधिक से अधिक मात्रा बाजार में बेचकर उसे घर के खर्च के लिये उपयोग करते हैं। एक अनुमान के अनुसार ऐसे वनवासियों द्वारा लघुवनोपज एकत्रीकरण एवं विक्रय से घर की आय का 20-54 प्रतिशत तक इससे प्राप्त हो जाता है।

जलवायु परिवर्तन से विगत कुछ वर्षों में सूखा एवं बाढ़ के कारण कृषि फसलें नष्ट हो जाती हैं और उनके पास कोई अन्य विकल्प न होने से अपनी आय को यथावत् रखने के लिये लघुवनोपज का अधिक से अधिक दोहन, यहां तक की विनाशयुक्त दोहन, करने के लिये आदिवासी संग्राहक बाध्य हो जाते है। उनके पास कृषि को उपजाऊ बनाने तथा सूखे एवं बाढ़ से बचाने का कोई साधन नहीं है। प्रायः आदिवासी क्षेत्रों में सिचाँई का प्रतिशत सबसे न्युनतम, है। डिण्डोरी और अनूपपुर के जिलों में तो यह एक प्रतिशत से भी कम है। डिण्डोरी जिले में वनो से पानी वर्ष भर बहता हुआ नीचे खेतो की सिँचाई करता था। वनों के उजड़ने (विनाशयुक्त वन उत्पाद दोहन के कारण) धीरे-धीरे यह ''वन और कृषि'' का संबंध बहुत सी जगहों पर समाप्त हो चुका है और एक समय उपजाऊ कृषि बंजर भूमि के रूप में परिवर्तित हो रही है। जलवायु परिर्वतन के कारण तथा सबंधित विभागों की इस ओर निष्क्रियता ने इस हालात को ओर खराब कर दिया है।

विनाशयुक्त दोहन से बहुत सी प्रजातियों के लुप्त होने या लाल सूची में आने की पूरी संभावना रहती है। वर्ष 2015 में यू.एन.डी.पी. से समर्थित अध्ययन में पाया गया कि अधिक एकत्र की जाने वाली प्रजातियां जैसे बेल, चिरोंजी, सफेद मूसली, आँवला, हर्रा एवं बहेड़ा की फसल का 10-90 प्रतिशत तक ह्रास हो गया है। इस गति से कमी होने की संभावना बढ़ रही है क्योंकि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन की गति बढ़ रही है जिसके परिणाम स्वरुप ग्रामीण की लघुवनोपज पर निर्भरता भी बढ़ रही है। आवश्यकता इस बात की है कि वनों पर बढ़ते दबाव को किस प्रकार कम किया जाए। ग्रामीण आदिवासियों के पास अजीविका के सीमित विकल्प होने से उन्हें अधिक से अधिक लघुवनोपज एकत्रित करना ही है। इन कारणों से एकत्रीकरण बढ़ाने एवं घर की आय यथावत् रखने के लिये उन्हें अपरिपक्व फल, फूल, जड़, पत्ती, तना इत्यादि को अधिक से अधिक (विनाशयुक्त) काटना ही पड़ता है जिससे जैवविविधता में असंतुलन हो रहा है।

2.1 विनाशविहीन विदोहन के सिद्धांत एवं उदाहरण

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जिसकी आजीविका वनोत्पादों पर निर्भर है उन्हें एक उत्तरदायी/जिम्मेदारी से इसका उपयोग करना चाहिये। गैर-जिम्मेदार विदोहन से शनैः शनैः वन क्षेत्रों में उत्पाद प्रायः लुप्त हो जाते है जिससे न केवल उनकी आय सतत् कम होती रहती है। वरन् उनकी आने वाली पीढ़ी पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस परिपेक्ष में विनाशविहीन विदोहन का तात्पर्य यह है कि वनोपज की उत्पादकता एवं अस्तित्व को बिना संकट में डाले वांछित वनोपज एकत्र किया जावे। प्रतिवर्ष जो उत्पाद वन क्षेत्रों में आते हैं उनका वह भाग जो परिपक्व (फल, फूल, कंद, तना, पत्ती इत्यादि) हो उसका 60-75 प्रतिशत तक ही दोहन किया जावे, शेष लगभग 25-30 प्रतिशत उत्पाद को भविष्य में उपयोग एवं पुनरोत्पादन के लिये छोड़ दिया जाये।

दूसरे शब्दों में चूँकि लघुवनोपज एक वार्षिक उपज होती है। बहुवर्षिया उपज जैसे सतावर एवं सफेद मूसली की जड़ में विभिन्न संख्या में ''फिंगर''/मूसली बनती रहती है। इनकी धीरे-धीरे मोटाई बढ़ती है। अनुभव बताते हैं कि जब मूसली मनुष्य के तर्जिनी अर्थात ''इंडेक्स फिंगर'' के मोटाई के हो जाये तो ही उनको निकालना चाहिए। इससे पतले मूसली को जमीन में उसी तरह से दबा देना चाहिए जिससे वे समय-समय पर उपरोक्तानुसार मोटाई प्राप्त करें और तभी उनका विदोहन किया जाए। आज आवश्यकता इस बात है कि उन्हें जिम्मेदारी से उखाड़कर केवल वांछित मोटाई के मूसली काटकर शेष जड़ को मिट्टी में दबा दिया जावे तो यह विनाशविहीन विदोहन का उदाहरण बन सकता है।

फलदार वृक्ष जैसे आँवला, हर्रा, बहेड़ा, चिरोंजी इत्यादि फल देने वाले वनोपज का विदोहन तब किया जाए जब वे परिपक्व हो जाए अन्यथा इसके पहले विदोहन से जो जमीन पर गिर जायेंगे उनका अंकुरण नहीं होगा और इस तरह वनों में इनका पुनरोत्पादन संभव

नहीं होगा। यदि परिपक्व होने के बाद निकासी की जाती है तो समय-समय पर जो फल नीचे गिरेंगे उनमें अंकुरण होगा और वे भावी फसल के रूप में विकसित होंगे। परिपक्व फल चिड़िया एवं अन्य जानवर खाकर उनके द्वारा पुनरोत्पादन समान रूप से वनक्षेत्र में बढ़ सकेगा। जो उपरी परत पर 25-30 प्रतिशत फल छूटेंगे उनसे इसी प्रकार वन क्षेत्रों में लघुवनोपज प्रजातियों का पुनरोत्पादन होगा और वन क्षेत्र में प्रजाति की भविष्य में कमी नहीं होगी।

गोंद निकालने के लिये पेड़ के तनों पर विभिन्न आकार के खाँचे (घाव) बनाए जाते हैं। इन घावों से जो गोंद निकलती है वह एक समय तक चलती है। प्रायः एक वर्ष तक पेड़ पर बनाए लगभग 15-15 सेमी. के घाव छाल काटकर बना दिए जाते है। इनसे निकलने वाली द्रव लगभग एक वर्ष तक गोंद के रूप में एकत्र किया जाता है। उत्पादन धीरे-धीरे कम होता रहता है तब ग्रामीण पेड़ों के उपर (पुराने ब्लेज/खाँचा) अथवा तने की दूसरी ओर नया खाँचा बना देते हैं। कुल्लु एवं सलई के वृक्षों के तनो से अधिक से अधिक गोंद निकालने एवं अधिक आय अर्जित करने के लिये वर्तमान में जहां तक आसानी से पहुँचा जा सकता है टेंपिग कर रहें हैं। इस विनाशहीन पद्धिति से गोंद निकलाने से पौधे इतने क्षतिग्रस्त हो जाते हैं कि कुछ समय में ही वे सूखकर नष्ट हो जाते हैं। सलई, कुल्लु एवं धावड़ा ऐसी प्रजातियां है जिनके बीच की अंकुरण क्षमता बहुत कम अतः इनका प्राकृतिक पुनरोत्पादन भी कम होता है।

बॉक्स 01 : संवेदी वन प्रबंधन की मूल भावना एवं अभ्यास

उपरोक्त उदाहरण से यह बताने का प्रयास किया गया है कि केवल परिपक्व वनोपज चाहे वह जड़ की मूसली हो, फल हो, पत्ती हो या अन्य कोई भाग हो उसका 60-70 प्रतिशत ही निकासी कि जानी चाहिए। यह काष्ठ विदोहन से थोड़ा हटकर है। काष्ट विदोहन के लिये जहां पेड़ो की प्रतिवर्ष मोटाई की गणना कर वार्षिक वृद्धि या ब्याज के रूप में करके अधिकतम उतने ही तक की निकासी की जा सकती है। इसमें भी अच्छे टिकाऊ वन प्रबंधन के लिये ब्याज का भी कुछ हिस्सा मूलधन के साथ छोड़ देना चाहिए जिससे ''काष्ठ'' की उत्तरोतर बढ़ती हुई स्टॉकिंग प्राप्त हो। लघुवनोपज में जहां प्रतिवर्ष उत्पाद आते हैं और उनका निकास होता है उसमें 25-30 प्रतिशत भाग इसलिये छोड़ते है कि वन क्षेत्रों में सतत् मात्रा एवं विकास बना रहे। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम के कारण आज लघुवनोपज एवं काष्ठ उत्पादक पेड़ों की पैदावार कम हो रही है क्योंकि पुनरोत्पादन सही मात्रा में स्थापित नहीं हो पा रहा है। टिकाऊ वन प्रबंधन का यह मूल मंत्र है कि संरक्षण एवं प्रबंधन इस तरह से किया जाए कि वनो का घनत्व अथवा लघुवनोपज की स्टॉकिंग कम ना होने पावें। स्थिति उत्तरोतर खराब हो रही है इसीलिए इस प्रकार के मार्गदर्शी हैण्डबुक की आवश्यकता है वन अधिकारी इसके परिपालन से वनों की समग्रता बनाए रखें यही ''संवेदी वन प्रबंधन'' की मूल भावना है।

लघुवनोपज उत्पादों के संग्रहण की क्षेत्र में वर्तमान प्रचलित विधियाँः- वर्तमान में औषधीय पादप उत्पादों का संग्रहण प्रायः विनाशयुक्त विधियों से किया जा रहा है। उदाहरण के लिये प्रजातियों के फलों तथा जड़ का विदोहन परिपवक्ता के पहले ही कर लिया जाता है। इसके अलावा कई बार उपलब्ध संपूर्ण फल-फूल, जड़ इत्यादि का संग्रहण कर लिया जाता है। इस प्रकार संग्राहकों की प्रचलित विदोहन प्रणाली को विनाशयुक्त प्रणाली कहा जा सकता है। वे विदोहन के समय वृक्षों/पौधों को काटकर, तोड़कर अथवा उखाड़कर नष्ट कर देते हैं। जिससे इनका प्राकृतिक पुनरोत्पादन प्रतिकूलतः प्रभावित हो रहा है, औषधीय पौधों एवं अन्य अकाष्ठीय वनोपज की उपलब्धता कम होती जा रही है। विनाशविहीन तथा संवहनीय विदोहन सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान में न तो कोई संस्थागत व्यवस्था है और न ही संग्राहकों को विनाश विहीन संवहनीय विदोहन की वैज्ञानिक तकनीकों की जानकारी हैं। इसके लिये इस संस्था द्वारा संग्राहको को विनाशविहीन विदोहन के संबंध में प्रशिक्षण देने का प्रयास किया गया है। साथ ही उन्हें वृक्षों को क्षति पहुंचाये बिना फलो को तोड़ने के लिये खरिया(बांस के डण्डे के सिरे पर लोहे का अर्द्ध चंद्राकार कटर) नामक औजार (Tools) भी दिया गया है।

2.2 लघुवनोपज के विदोहन के प्रकार

(अ) विनाशकारी/निकासी/कटाईः- पूरे पेड़/पौधे को उखाड़ना या पेड़ की छाल निकालना, काटना, हटाना, पेड़ों के तने पर अत्याधिक घाव बनाकर गोंद निकालना इत्यादि। इस प्रकार के विदोहन से पौधा/वृक्ष धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है और पूरे क्षेत्र में ऐसी प्रजातियों की संख्या घटने लगती है। जैव विविधता के ऐसे ह्रास को गैर-उत्तरदायी या विनाशकारी कटाई या निकासी कहा जाता है।
(ब) अपरिपक्व/समय से पहले वन उपज काटनाः-किसान धान, गेहूँ तथा अन्य फसल उगाता है परंतु उसकी कटाई फसल पकने के बाद ही करता है। इसके विपरीत लघुवनोपज संग्राहक बाजार में माँग बढ़ने से (वर्ष भर मांग बनी रहती है) तथा उसके पास आय का साधन न होने, कृषि फसल बर्बाद हो जाने आदि के कारण वह बिना पके ही वनोपज विदोहन करके बेच देता है। उदाहरण आँवले का फल नवम्बर के बाद ताँबे रंग की धारी बनने के साथ पकती है, उसका वजन बड़ जाता है पर उसे हरे रंग की धारी में ही तोड़ लिया जाता है।

(स) संपूर्ण उपज की निकासी:- जैसा की इस अध्याय में अन्यत्र स्पष्ट किया गया है कि संपूर्ण उपज का विदोहन न करके 60-70 प्रतिशत तक ही विदोहन किया जाए। 30-40 प्रतिशत भाग को वन में छोड़ देना चाहिए जिससे वह वन्यप्राण्यिों के काम आ सके, जमीन पर गिरकर अगली फसल के लिये पुनरोत्पादन बढ़ा सके, प्रजाति का घन्तव इस तरह से हो कि उपज और एकत्रीकरण घटने के बजाये बढता रहे जिससे संग्राहकों को विनाशकारी विदोहन करने की नौबत न आवें। आज संग्राहक अपनी आय बढ़ाने के उद्देश्य से या खरीददारों के प्रलोभन के कारण, उनके द्वारा दिये गये अग्रिम के समायोजन के लिये इत्यादि ऐसे बहुत से कारण है जो संग्राहक को संपूर्ण उपज निकालने हेतु बाध्य करते है। शासकीय वन क्षेत्रों में शासन ने संग्राहकों को वन में जाने एवं अपने पंसदीदा लघुवनोपज के एकत्रीकरण के लिये छूट दे रखी है न कि उन्हें वृक्ष/पौधे को किसी तरह का नुकसान पहुँचाने की कोई छूट है। वनाधिकारियों को यह मालूम है अतः उन्हें उपरोक्त गैर-जिम्मेदार विदोहन के प्रति संग्राहकों को समझाना चाहिये और यदि वे नहीं मानते तो नियमानुसार उनके विरुद्ध वन अधिनियम के धाराओं के अंतर्गत संग्राहकों को सचेत करना चाहिए। गरीब संग्राहक के विरुद्ध कोई भी पेनल कार्यवाही उचित नहीं होगी लेकिन जहां वे बेच रहे हैं उन व्यापारियों को गलत काम के दुष्परिणामों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

2.3 लघुवनोपजो का सतत् प्रबंधन एवं उपयोग

वन प्रबंधन की कार्य-आयोजना (वर्किंग प्लान) एक ''वैज्ञानिक एवं अत्यंत पवित्र'' ग्रंथ से कम नहीं है। वनों के अंदर क्या कार्य किए जावेंगे और कौन से कार्य वर्जित है। इसकी स्पष्ट एवं क्रमवार ढ़ंग से कार्य आयोजना में वर्णित किया जाता है। इसमें कब और कितने वृक्ष कहाँ काटना है जिससे उस क्षेत्र का पुनरोत्पादन एवं अनततः उत्पादकता बढ़े, आग, चराई, कटाई इत्यादि पर कितना एवं कैसी रोक हो यह भी इसमें वर्णित है। वन प्रबंधन लम्बे समय तक काष्ठ के सतत् उत्पादन और पुनरोत्पादन को मध्य में रखकर बनाए जाते रहे है। लघु-वनोपज देने वाली जैव-विविधता का विवरण, उपचार, उपयोग, उत्पादकता का संक्षिप्त वर्णन इसमें दिया जाता रहा था परंतु आज के परिपेक्ष्य में उसे ''सतही उपचार'' के रूप में उसका मूल्यांकन करना अनुचित होगा। यह कहना सही नहीं होगा कि वनाधिकारी इनके औषधीय गुणों, इन पर ग्रामीणों की निर्भरता उनकी आय इत्यादि से अनभिज्ञ थे। बात इतनी ही थी कि वे काष्ठ को उसके मूल्य और लघुवनोपज अर्थात् नगण्य मूल्य का आंकलन करते थे। सत्तर के दशक में जब काष्ठ के अतिरिक्त अन्य लघुवनोपजों का समग्र मूल्यांकन करके वनों की उपयोगिता में इनकी विवेचना की जाने लगी तब से कार्य-आयोजना बनाते समय इन पर कुछ लिखा जाना लगा। वनों पर अनुसंधान कर रहे विद्वानों, नीति निर्माताओं एवं वनाधिकारियों ने वनोत्पादों की परिभाषा को बढ़ा दिया जिसमें इमारती लकड़ी के साथ-साथ लघु वन उपजों के बारे में भी अनुसंधान विकास तथा चर्चा की जाने लगी इनका सीधा सबंध वनों पर आधारित आदिवासी तथा ग्रमीण गरीबों का जीवन-यापन से जुड़ा है। उनके घर की आय का एक बड़ा हिस्सा (20-54) प्रतिशत भारत-शासन के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने वर्किंग प्लान कोड़ तैयार करने एवं उसमें लघु-वनोपजों के बारे में आवश्यक निर्देश दिये गए हैं। वर्ष 2010 के बाद भारत शासन ने यह अनुभव किया कि इन संसाधनों का सही आंकलन तथा उसके प्रबंधन पर अधिक स्पष्ट निर्देश होने चाहिए परिणाम स्वरूप नया ''वर्किंग प्लान'' कोड 2014 में लघुवनोपजों के संसाधन आंकलन एवं टिकाउ वन प्रबंधन के बारे में विस्तृत निर्देश दिये गये। आज बनाये जा रहे कार्य-आयोजना प्रतिवेदनों में लघु-वनोपज के बारे में अलग अध्याय तो जोड़ ही दिया गया है उसके आकलन एवं प्रबंधन के बारे में भी ब्योरा दिया गया है।

उपरोक्त दस्तावेजीकरण के प्रयास के बावजूद क्षेत्रीय स्तर पर संसाधनों का ह्रास हो रहा है और संग्राहक अभी भी कच्चे माल को कम कीमत पर बेचने के लिये बाध्य हैं। अतः अब आवश्यकता इस बात की है कि कम से कम प्राथमिक प्रसंस्करण अवश्य हो तथा संग्राहक (स्व-सहायता समूह) अधिक सक्षम हों जिससे उन्हें उचित कीमत उनके द्वारा एकत्रित माल का मिल सके और इन संसाधनों का सही प्रबंधन एवं मूल्यांकन समय-समय पर किया जा सके।

3. टिकाऊ प्रबंधन के मुख्य अंश :- इसके तीन मुख्य अंश होते है।

(अ) पारिस्थितिक स्थिरता : पर्यावरण का यह भाग सुनिश्चित करता है कि इससे जैवविविधता जहाँ तक संभव हो उसमें कोई बदलाव किए बिना उसे स्थिर रखा जावे। इससे जैवविविधता से जुड़े हुए तत्व यथा भूमि, जल, पौधों की विविधता एवं घनत्व में आपसी समन्वय हो, उसमें कोई स्थायी कमी ना आने पावे। दूसरे शब्दों में इकालोजिकल इंटीग्रिटी संपूर्णता बनी रहे।

(ब) सामाजिक स्थिरता: वन और वनोपज के सही उपयोग का पहला अधिकार लोगों का होता है। किसी भी प्रबंधन से सामाजिक-उपयोगिता कम नहीं होनी चाहिए। लघु-वनोपज के परिपेक्ष्य में जो लोग आज लघुवनोपज की जितनी मात्रा में अपने जीवन-यापन के लिये एकत्रिकरण एवं आय अर्जित कर रहे हैं वह सदैव बना रहना चाहिए, यहाँ तक की महंगाई के हिसाब से उसे बढ़ता ही रहना चाहिए यह उपयोगिता वर्तमान पीढ़ी तक सीमित ना होकर आने वाली पीढ़ी को भी मिले यही साामाजिक स्थिरता का सही अर्थ है।

(स) आर्थिक स्थिरता : लघु-वनोपज से मिलने वाले लाभ-आर्थिक उपलब्धि में कमी नहीं होनी चाहिए। इसके लिये सही माल उनकी सही गुणवत्ता एवं उचित बाजार एवं मूल्य का रास्ता स्पष्ट बना रहे। वर्तमान में सही मूल्य बाजार में नहीं मिल पाता इसलिए संग्राहक बाध्य होकर दूर-दूर तक परिश्रम करके लघु-वनोपज एकत्र करते है।

कम-मूल्य की भरपाई के लिये वे विनाशकारी विदोहन करने के लिये उन्हें बाध्य होना पड़ता है। वनों को तथा उसमें पाई जाने वाली वनोपजों का सही स्टाक होना होता है जिससे न केवल पुनरोत्पादन का सही स्तर बना रहे बल्कि संग्राहकों को लघुवनोपज की सतत् उपलब्धता भी बनी रहे।

2.4 लघु-वनोपज की प्रचालित निकासी की पद्धितयाँ एवं व्यवस्थाएं:-

प्राकृतिक वनों में विभिन्न- लघुवनोपज की मात्रा वर्ष दर वर्ष कम होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन का कृषि फसलों के उत्पादन में कमी के कारण लघुवनोपज पर निर्भरता बढ़ रही है। पिछले कुछ दशकों में स्वास्थ के प्रति बढ़ते जागरूकता से प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की ओर रूझान भी बढ़ रहा है। जिससे भारतीय औषधीय पद्धति के प्रति लोगों का आकर्षण अधिक हो रहा है। परिणामस्वरूप हर्बल उद्योगों की इकाईयाँ वर्ष दर वर्ष बढ़ रही हैं। इनकी बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक कच्चा माल वनों से प्राप्त करने की होड़ इन इकाईयों में जारी है। पिछले 2-3 दशकों में आयुष मंत्रालय द्वारा भारत सरकार तथा उसके उपक्रमों के द्वारा वन औषधीयं पौधों की खेती को बढ़ावा देने के प्रयास प्रारभ किए जिससे कच्चे माल के लिये प्राकृतिक वनों पर कच्चे माल की आपूर्ति के लिये निर्भरता कम किया जा सके।

2.5 संसाधनों का आकलन एवं वन प्रबंधन में उपयोग:-

संसाधनों का आंकलन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। संसाधन न केवल स्थिर रहें वरन् वे वर्ष दर वर्ष बढ़ते रहे यही टिकाऊया संवेदी वन प्रबंधन/लघु वनोपज प्रबंधन का सही गन्तव्य है। कार्य आयोजना बनाते समय वनाधिकारी इसका आंकलन करते हैं और सभंवताः वे इसकी तुलना गत कार्य आयोजना में दिये गये अनुमान (वर्ष दर वर्ष निकासी की मात्रा) इत्यादि से करते होंगे। यह अनुमान वन की समग्रता एवं विकास की झलक दे सकता है। इससे यह भी पता लगाया जा सकता है कि आंकलन के विपरीत निकासी कितनी प्रतिशत अधिक या कम की जा रही है। मध्यप्रदेश के वन क्षेत्रों में इससे संवेदी वन प्रबंधन की स्थिति का आकलन किया जा सकता है। यह मानने का पूरा आधार है कि वन कार्यआयोजना जो इतने ''प्रशासनिक परतों''(Layers) से गुजरता है उसमें इस तथ्य का प्रमाणीकरण अवश्य होता होगा। इस धारणा के विपरीत यह तथ्य सामने आया है कि इस पर अभी और काम करने की आवश्यकता है क्योंकि लघुवनोपज उत्पादन की घटती मात्रा को ध्यान में रखते हुये इस पर विस्तृत आंकड़े एकत्र करने एवं उसके विश्लेषण की आवश्यकता है।

2.6 वनक्षेत्रों में आंकलन करने की सामान्य विधि:-

कुछ पेड़ों पर फसल आने के समय आंकलन किया जा सकता हैं। इसके लिये वनाधिकारी ग्रामीणों को बारी-बारी से वनक्षेत्रों में ले जाकर पेड़ के सामने (महुआ, अचार, आँवला इत्यादि) के उपज का आँकलन कराना चाहिए। यदि संग्रहकर्ताओं में महिला-पुरूष तथा विभिन्न आयु वर्ग के है तो सभी का अनुमान का औसत लेकर आंकलन किया जा सकता है। इसी के आधार पर कितना निकासी किया जाए एवं कितना पेड़ पर छोड़ा जाए तय किया जा सकता है। यही जड़ वाले गोंद वाले तथा अन्य उपज देने वाले पौधों से उपज का आंकलन किया जा सकता है। यदि कार्य-आयोजना बनाते समय इस प्रकार का आंकलन किय गया हैं तो वर्तमान स्थिति का सही-सही मूल्यांकन किया जा सकता है कि आज वनक्षेत्र में सही प्रंबधन हो रहा है या नहीं।

वन क्षेत्रों में संग्राहको को साथ लेकर 25x25मीटर के सेम्पल प्लॉट (इसका आकार वनक्षेत्र में लघुवनोपज के घनत्व के आधार पर बढ़ाया-घटाया जा सकता है) बनाकर उसमें 2x2 मीटर के छोटे 5 प्लाट बनाये जाये एवं उसमें पुनरोत्पादन की स्थिति का आंकलन किया जाना चाहिए। इससे ग्रामीणों को यह बताया जा सकता है कि किस तरह से उनके गैर-जिम्मेदार निकासी एवं प्रबंधन से वनोपज की जैवविविधता कम हो रही है। वर्ष भर में जब भी अवसर मिले कोशिश करना चाहिए।

भाग 'ब'

मध्यप्रदेश में पायी जाने वाली प्रमुख लघु-वनोपज एवं औषधीय पौधों के विनाशविहीन विदोहन की मार्गदर्शिका

Sustainable Harvesting Protocol of most Collected NTFPs and Medicinal plants of Madhya Pradesh

लघुवनोपज की मध्य प्रदेश के वनों में पारिस्थितिक को दर्शाते चिन्ह

चिन्ह	स्थिति
	असुरक्षित
	गंभीर स्थिति
	संकटग्रस्त
	उपलब्ध परंतु कमजोर प्रबंधन
	उपलब्ध एवं सुरक्षा प्रबंधन
	संपन्न प्रजाति एवं उच्च सुरक्षा प्रबंधन
	प्रचुर मात्रा में उपलब्ध एवं उच्च सुरक्षा प्रबंधन

फल उत्पादक प्रजातियाँ

1. आँवला (एम्ब्लिका ऑफिसिनैलिस)

पारिस्थितिकीय स्थिति

आँवला परम्परागत भारतीय चिकित्सा प्रणाली की प्रसिद्ध औषधियों में से एक है। यह ऐशिया के अलावा यूरोप और अफ्रिका में भी पाया जाता है हिमालय क्षेत्र और प्रायद्वीपीय भारत में बहुतायत मात्रा में पाया जाता है। परम्परा के अनुसार इसका प्रयोग लैक्सेटिव (रेचक औषधि), आँखे धोने की दवाई, भूख संतुलित रखने की दवा, पौष्टिक टॉनिक के रूप में किया जाता रहा है तथा यह एनोरेक्सिया, बदहजमी, डायरिया, खून की कमी एवं पीलिया के इलाज में भी काम आता है। आँवला अपने विटामिन सी के उच्च स्तर के कारण अत्यंत प्रसिद्ध है। विटामिन सी खाना पकाने के दौरान ताप एवं संग्रहण से होने वाले नुकसान के लिए प्रतिरोधक का कार्य करता है।

1. पौधे का आकार:- यह एक पर्णपाती पेड़ है, जो मध्यम आकार का होता है तथा इसकी ऊँचाई 8-18 मी. होती है और इसका तना सीधा तथा डालियां फैली हुई होती हैं। इसकी पत्तियाँ साधारण, आधी डंठल वाली एवं हरियाली युक्त पीले फूल उगते हैं। इसका फल गोलाकार व गहरे हरे/पीले रंग का होता है जिसमें 6 लम्ब आकार के खांचे होते हैं। 2.24सेमी व्यास एवं 568 ग्राम वजन वाले इसके फल अधिक गूदे वाले होते हैं। फल की पथरी 6 धारियों वाली होती है जो तीन खंडों में विभक्त होती है। प्रत्येक खंड में सामान्यतः 2 बीज होते हैंः जो 2-5 मिमी.लम्बे एवं 2-3 मिमी.चौड़े होते हैं। प्रत्येक बीज का वजन लगभग 572 मिग्रा.होता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इसका उपयोगी भाग फल (आँवला) होता है। इसमें विटामिन सी अधिक मात्रा में पाया जाता है, इसके अलावा इसमें गैलिक ऐसिड़, टेनिक ऐसिड़, शर्करा (ग्लूकोज) आदि तत्व भी पाये जाते है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- फलों के संग्रह हेतु पके फलों के साथ-साथ अधपके फलों को भी तोड़ लिया जाता है सामान्यतः संग्रहकर्ता पेड़ की टहनी को भी काट देते है। फलों के संग्रह हेतु कभी-कभी पूरे पेड़ को भी काट दिया जाता है। डंडे की सहायता से पेड़ की शाखाओं को जोर-जोर से हिलाने पर फल अपने आप ही गिरने लगते हैं जिससे उनमें धूल, बारीक कंकड़ और पत्थर गूदे में फंस जाते हैं इस कारण फल में फंफूद और जीवाणु के संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है।

4. विनाश विहीन विदोहन विधि:-

(i) दोहन हेतु पौधों/पेड़ों का चयन करना

- चूँकि पेड़ अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं, फलों के संग्रहण के लिए प्रत्येक संग्रहकर्ता हेतु क्षेत्र निश्चित किया जाना चाहिए।
- फलों की कटाई हेतु तैयार वृक्षों पर लाल निशान लगाया जाना चाहिए।
- केवल बीजों के उत्पादन हेतु कुछ क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिए और इनकी फेंसिंग की जानी चाहिए।
- गूदा निकालने की प्रक्रिया में फलों को गरम पानी में उबाला जाता है, इस प्रक्रिया में बीज खराब हो जाते हैं, इसलिये बीज उत्पादन क्षेत्र पर्याप्त होना चाहिए जिससे न केवल उस क्षेत्र बल्कि अन्य क्षेत्रों हेतु भी समुचित मात्रा में बीजों का उत्पादन किया जा सके।
- सबसे अच्छा विकल्प यह है कि बिल्कुल पके फल (पीले से तांबे के रंग का) चुनकर उसमें से गूदा निकालकर बीजों को सड़ने दिया जाये, जिससे उसमें लगे हुये कुछ गूदे का भाग शीघ्र क्षय हो जाये तब बीज बुवाई के काम आ सकता है। ऐसे बीजों का अंकुरण प्रतिशत अच्छा होता है। गूदा निकालने के लिये छोटी सी मशीन बनाई जा सकती है। भोपाल स्थित सीआईए ई जो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का संस्थान है उसने इस प्रकार की बहुत सी मशीनों को बनाया है। इसमें आँवले के गूदे तथा बीज दोनों की गुणवत्ता ठीक रह सकती है।

(ii) फलों के गुण:- पकने पर आँवले का फल हल्के हरे रंग का तांबे के रंग का मिश्रित हो जाता है। पके हुए फलों का व्यास 15 से 25 सेमी. होता है। ये बिना किसी दाग-धब्बे के और साफ होना चाहिए। परिपक्व फल गूदेदार, 224 सेमी. व्यास वाले तथा 568 ग्राम वजनी होते हैं।

(iii) फल तोड़ने की विधि:-

- फलों के विदोहन के दौरान पेड़ या उसकी शाखाओं को तोड़ना नहीं चाहिए।
- फल तोड़ने के लिये आवश्कतानुसार लम्बी आंकड़ी का प्रयोग करें।
- 60-75 प्रतिशत फल का विदोहन करना चाहिए तथा 25-30 प्रतिशत जो उपरी भाग में होता है उसे छोड़ देना चाहिए।
- फलों का संग्रहण हुक और जाली से बने बांस (खरिया) की सहायता से किया जाना चाहिए।
- फलों को आसानी से एवं साफ सुथरे इकट्ठा करने के लिए और उन्हें धूल से बचाने हेतु जमीन को गोबर और मिट्टी के लेप से लीपना चाहिए अथवा टाट के बोरों या काली पॉलीथिन शीट से ढंकना चाहिए।
- ढ़ंकी हुई जमीन पर गिरे हुए फलों का संग्रह करना चाहिए।
- पके फलों को तोड़ने के लिए पतले बांस की छडें जिसमें हसियाँनुमा हुक लगा हो तथा जाली का बैग बँधा हो उसी में फल इक्टठा किया जाना चाहिये। गाँव में आम तोड़ने के लिये यह एक उपयोगी विधि है। इस प्रकार तोड़े गये आम अचार बनाने के काम में लाये जाते है। यही प्रक्रिया आँवले के लिये भी अपनाई जा सकती है। वैसे भी आँवले के पेड़ बहुत बड़े नहीं होते है।
- विदोहन के पश्चात् फलों की उनके आकार के अनुसार ग्रेडिंग की जानी चाहिए।

(iv) फल तोड़ने का समय एवं पेड़ की उम्र:- आँवला पेड़ में चार साल के बाद फल लगना शुरू होते हैं और फल नवम्बर-जनवरी माह में पूर्ण परिपक्व हो जाते हैं। फल पर जब ताँबे के रंग की पट्टी आ जाये, हल्के पीला हो तभी तोड़ने से उसमें सही औषधीय गुण होता है। प्रायः व्यापारी ग्रामीणों को सितम्बर में फल तोड़ने के लिये प्रेरित करते है क्योंकि उस समय रेशे कम होते है अतः उनसे गूदा निकालना आसान होता है। फलों का विदोहन नवम्बर के बाद में किया जाना चाहिए। इसके लिए, प्रत्येक क्षेत्र में संग्रहण काल के विषय में रेंज या मंडल द्वारा सूचित किया जाना चाहिए। वर्तमान में जब जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि फसल बार-बार खराब होती है तो ग्रामीण भी जल्दी फलों को तोड़कर व्यापारी के पास ले जाने का प्रयास करते है। पिछले लगभग 2 दशकों में यह परिवर्तन इन लघुवनोपजों के लिये अत्यंत नुकसानदेह साबित हुआ। एक अनुमान के अनुसार संग्राहकों में आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण अधिक

वृक्ष काटे जाने लगे है। प्रति वर्ष लगभग 15-20 प्रतिशत वृक्ष इसी तरह से कटते रहें हैं और आज स्थिति यह है कि बहुत से आँवला वनक्षेत्र अब आँवला विहीन होते जा रहे है। अब केवल श्योपुर, पन्ना, उत्तर बैतूल, शहडोल जिलों में ही कुछ आँवले के वृक्ष पाये जाते है। अन्य वन मंडलों में जहाँ 20-30 वर्ष पहले 10 हजार टन आँवला का उत्पादन होता था वह घटकर के 1000 हजार टन या इससे भी कम हो गया है।''ग्रीन इंडिया मिशन''द्वारा चलाये जा रहे वन संरक्षण एवं विकास कार्यो के कारण वन मंडल अधिकारी धीरे-धीरे ऐसे प्रमुख लघुवनोपज वृक्षों जैसे आँवला के पुनरोत्पादन को बढ़ावा दे रहे है। आवश्यकता इस बात की भी है कि कम से कम 100 वृक्ष प्रति हेक्टेयर आँवले के वृक्षारोपण में शामिल किया जाये, जिससे आँवला की पूर्व उत्पादकता पुनः स्थापित हो सके। फल तोड़ने के लिये आंकड़ी (चित्र में दर्शाया गया है) का सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाये जिससे उनकी टहनियों को कोई नुकसान नहीं पहुँचना चाहिए।

जिस तरह से महुआ के फूल को एकत्र करने के लिये मछली पकड़ने वाले नायलॉन के जाल को पेड़ के नीचे दो भाग (वृक्ष के तने के दोनो ओर) में लगाया जाता है उसी तरह से आँवले को एकत्र करने के लिये इस जाल का उपयोग किया जा सकता है। फर्क केवल इतना हो कि महुॅआ फूल प्रातः अपने आप वृक्ष से गिरता है जबकि आँवला फल को आँकड़ी से तोड़कर जाल पर गिरा लेना चाहिए। महूआ के वृक्ष ग्रामीण आपस में बाँट लेते है। यदि यही प्रक्रिया आँवले के फलों को एकत्र करने के लिय की जाये तो वृक्ष को नुकसान नहीं होगा तथा उससे फल की गुणवत्ता बनी रहेगी।

(v) फल तोड़ने की सीमाः- प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि केवल 60-75 प्रतिशत फलों का ही विदोहन किया जाए, शेष फलों को पक्षियों के लिए छोड़ना चाहिए जो वनों में बीजों का फैलाव करते हैं। प्रत्येक पेड़ पर 10-15 प्रतिशत फलों को छोड़ देना चाहिए।

(vi) परिवहन के लिए पैकेजिंगः- उचित वायु संचालन हेतु फलों को छेदयुक्त टाट के बोरों या पॉली बैग में पैक किया जाना चाहिए।

(vii) परिवहन की विधि और समयः-फलों का परिवहन शाम को या सुबह किया जाना चाहिए जिससे फलों में नमी समाप्त न हो।

(viii) फलों का तुड़ाई पश्चात् प्रबंधन :- आँवला के फल प्रकृति अनुसार जल्द खराब होने वाले होते हैं क्योंकि विदोहन और उपयोग के बीच का समय अंतराल कुछ ही दिनों का होता है। संग्रहण केंद्रों पर आम तौर पर शीत संग्रहण सुविधा उपलब्ध नहीं होती है। फलों का संरक्षण जीरो एनर्जी कूल चैम्बर में किया जाना चाहिए जिससे फलों की भंडार और उपयोग होने तक की अवधि बढ़ाई जा सके। इसके लिए तापमान कम रखना चाहिए और चैम्बर में आद्रता उच्च रखी जानी चाहिए। जिन वन क्षेत्रों में ऑवले के पेड़ पर्याप्त मात्रा में खड़े है उनमें आग एवं चराई से सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। ऐसे आँवला वाले वन क्षेत्र पन्ना, सतना, कटनी, बालाघाट, मंडला व डिंडोरी क्षेत्र माने जाते है। छत्तीसगढ़ में भी बहुत से वन (यथा धमतरी एवं कोडागाँव) ऑवलें के वनों के लिये प्रसिद्ध थे। धीरे-धीरे असंवहनीय कटाई एवं निकासी के कारण इनकी संख्या में लगातार कमी होती रही है। आज बहुत से वन क्षेत्रों में आंवले के पेड़ों की संख्या में 10-90 प्रतिशत तक की कमी आई हैं।

(ix) अपव्यय/नुकसान को कम करने के तरीके :- केवल पके फलों का संग्रहण करना चाहिए। क्षतिग्रस्त फलों को पक्षियों और प्राकृतिक पुनरोत्पादन हेतु वन में रहने दिया जाना चाहिए, जिससे वे भविष्य में काम आ सके।

5. पुनरोत्पादन की विधिः- बीज के द्वारा तथा तने की कटिंग द्वारा पुनरोत्पादित किया जाता है। वनों से कच्चा आँवला फल तोड़ने से बीज की कमी तथा वनों में लगातार जैविक प्रभाव के कारण अंकुरित पौधे पनप नहीं पाते। यहीं कारण है कि आँवले के वृक्षों की संख्या वनों में विगत 10 वर्षों में बहुत कम हुई है। एक अध्ययन के अनुसार यह 10-90 प्रतिशत तक कम हो गया है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना :-

- पेड़ को बीज धारक के रूप में चिन्हित किया जाना चाहिए।
- प्रत्येक पेड़ के 10-25 प्रतिशत फलों को पेड़ पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए।
- प्राकृतिक अंकुरण विधि को अपनाया जाना चाहिए। ऐसे अंकुरित पौधों की सतत् सुरक्षा एवं देखरेख करते रहना चाहिए जो पौधे स्थापित हो चुके है। उनके चारों तरफ थाला बनाकर नमी का संरक्षण करना चाहिए।
- निगरानी और मूल्यांकन-सुझाये गए उपायों के लिए हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय समय पर करेगी।
- आँवले का अंकुरण प्रतिशत सामान्य रूप से 80-90 प्रतिशत होता है तथा पौध प्रतिशत 60-70 प्रतिशत।
- बीमार एवं क्षतिग्रस्त भाग को धारदार औजार से काट कर अलग किया जाना चाहिए।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- महिला स्व-सहायता समूह के द्वारा आँवले से बहुत से उपयोगी तथा स्थानीय रूप से खपत होने वाली उत्पाद बनाये जा सकते है। इनमें आँवले का मुरब्बा, आचार, शरबत इत्यदि प्रमुख है। आँवले को सुखाना मूल्य वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण कदम है इसे बहुत अधिक धूप में सुखाने से काला पडने की संभावना रहती है जिससे इसका मूल्य बाजार में 30-40 रूपये प्रति-किलो होता है। यदि इसे सोलर टनल में सुखाया जाए तो इसका रंग सफेद बना रहेगा और इसकी कीमत प्रति-किलो 100 रुपये या इससे अधिक मिल सकती है।

मुरब्बा

जैम

कैंडी

2. बेल फल (ईगल मारमोलोस)

इस पौधे का उद्गम स्थल भारत वर्ष है। यह पौधा बहुउपयोगी है, इसका प्रत्येक भाग काम में आता है। यह औषधीय होने के साथ-साथ, पोषण, वाणिज्य, धार्मिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है। भारत में यह उष्णकटीबंधीय एवं उप उष्णकटीबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। यह हिमालय के तराई वाले क्षेत्र से लेकर 5000 मीटर की ऊँचाई तक भी पाया जाता है। यह बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान तथा दक्कन पठार के साथ साथ समुद्र के पूर्वी तट पर बहुतायत में पाया जाता है।

1.पौधे का आकार:- बेल के पौधे की ऊँचाई 8 मीटर के लगभग होती है। यह सीधा, कक्षीय कांटे वाला और पीले भूरे रंग का होता है जिसके तने पर उथली गहराई की छाल होती हैं। पुष्प हरित सफेद एवं मीठी खुशबूयुक्त होते हैं जो कक्षीय गुच्छों में लगे होते हैं। फल गोलाकार, पीला छिलका तथा काष्ठीय बेरी प्रकार के होते हैं। इसमें माह मई-जुलाई में पुष्प आते हैं मई माह के तीसरे सप्ताह में फल आने प्रारंभ होते जाते हैं और अक्टूबर के अंत तक लगभग इनका आधा आकार हो जाता है। आगामी अप्रैल माह में पूर्ण रूप से पत्ते झड़ जाते हैं। पकने पर फल पीले रंग के होते हैं अतः फलों के पकने में लगभग एक वर्ष का समय लगता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- फल और छाल इसके उपयोगी भाग है एवं सक्रिय घटक एल्केलौइड्स, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और टैनिन हैं। यद्यपि इसका प्रत्येक भाग उपयोगी हैं परन्तु इसके फलों का गूदा और पत्तियों का अर्क विभिन्न प्रकार की बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है जैसे, डायरिया और पेचिस, कब्ज, पेट का अल्सर, श्वसन संबंधी संक्रमण इत्यादि। इसका गूदा खनिज एवं विटामिन से भरपूर होता है जिसके कारण इससे कई प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे शरबत, नेक्टर, स्क्वाश, मुरब्बा इत्यादि बनाये जाते हैं। अधपका बेल फल थोड़ा कसैला होता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- फल तोडने हेतु बांस की 3-4 मीटर लंम्बी छड़ी में एवं उसमें थैली बंधी हो द्वारा संग्रह करना चाहिये। पेड़ की शाखाओं को जोर-जोर से हिलाँए तो फल अपने आप ही गिरने लगेंगे जो जमीन पर गिरने से फट जाते हैं और उनमें धूल, बारीक कंकड़ पत्थर गूदे में फंस जाते हैं जिससे फल में फंफूद और जीवाणु के संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। अतः इसको रोकने के लिए पेड़ के चारों ओर लकड़ी का सहारा देकर एक जाल बांध देना चाहिए और फिर शाखाओं को जोर से हिलाए जिससे फल टूटकर जाल के ऊपर ही गिरें।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधि/नियम:-

(i) विदोहन के लिए पौधे का चयन करना: फलों के संग्रहण के लिए बेल के वृक्षों को संग्राहकों के बीच वितरित करना चाहिए अथवा प्रत्येक पौधा किसी न किसी के अधिकार में होना चाहिए। केवल पके फलो को ही तोड़ा जाना चाहिए। छाल निकालने के लिए आवश्यक है कि जमीन से 4 फीट ऊँचाई पर (व्यस्क मनुष्य के सीने के बराबर ऊंचाई) पौधे के तने की मोटाई लगभग 80 सेमी.हो।

(ii) परिपक्वफलों की तुड़ाई की विधि: पकने पर फल अपने आप जमीन पर गिरने लगते हैं और इन्हीं को एकत्रित करना चाहिए। बेल का खोल कठोर होने से उसके नीचे गिरने से भी फल को कोई नुकसान नहीं होता है, लेकिन यदि जाल के ऊपर गिराया जाता है तो फल पूरी तरह से सुरक्षित रह सकता है।

(iii) छाल निकालने का तरीका: छाल को छीलने के लिए एक तेज धारदार चाकू की मदद से इस प्रकार छीलें कि तने का कठोर काष्ठीय भाग को नुकसान न पहुंचे, इसके पश्चात पेड़ से तब तक दुबारा छाल न निकालें जब तक कि घाव पूरी तरह भरकर परिपक्व छाल न बन जावे, इसमें लगभग तीन वर्ष का समय लगता है। छाल तने पर अर्ध गोल घेरे में निकालें एवं घेरे की चौड़ाई 20 से.मी. से अधिक नहीं होना चाहिए। दुबारा छाल तने की अन्य जगह से निकालें।

(iv) फलों की तुड़ाई का समय और उम्र: बेल का पौधा 5 वर्ष बाद फल देना प्रारंभ करता है और इसके फल अप्रैल-मई माह में पकते हैं अतः इससे पूर्व नहीं तोड़ना चाहिए।

(v) तुड़ाई की सीमा: 70-80 प्रतिशत फलों को ही तोड़ना चाहिए शेष को पक्षियों एवं बीजों के प्रसार के लिए छोड़ना चाहिए।

(vi) फलों की तुड़ाई पश्चात् प्रबंधन: संग्रहित फलों को कच्चे, अधपके और पूर्ण रूप से पके फलों को अलग अलग कर लेना चाहिए।

- **पके फलों का प्रसंस्करण:** पूर्ण रूप से पके फलों को स्वच्छ कपड़े या पलिथीन शीट पर फैलाएं और 3-4 दिनों तक धूप में सुखाए। सूखने पर फल का कठोर खोल से गूदा अलग हो जायेगा तथा खोल में दरार पड जायेंगी। अब हल्की चोट से खोल से गूदे को अलग किया जा सकता है। गूदे को अलग करके इसको चार भागों में काटें और बीजों तथा सफेद तंतुओं को गूदे से अलग कर दें। 4-5 दिन सुखाने के बाद गूदे को पलट दें ताकि उसके प्रत्येक सतह धूप के संपर्क में आये और समान रूप से सूखे। यह लगभग 15-25 दिनों में पूर्ण रूप से सूख जावेगा।

- **कच्चे और अधपके फलों का प्रसंस्करण:** इस प्रकार के फलों से गूदा अलग करने के लिए फलों को पानी में उबालते हैं और थोड़ी देर के लिए ठन्डे पानी में रखते हैं ऐसा बार बार करते हैं और आखिर में खोलते पानी में 5-10 मिनट के लिए रखते हैं इसके बाद की प्रक्रिया वैसे ही है जैसे पके फलों को सुखाने के लिए करते हैं।

- **भण्डारण:** पूर्ण रूप से सूखे हुए गूदे को माइक्रोन मोटाई के पालिथीन में वायुरोधी पैकिंग करके जूट के बोरों में पैकिंग करते हैं और इन बोरों को शुष्क स्थानों पर रखते हैं। जिस कमरे में रखें उसमें अधिक नमी, सीलन नहीं होना चाहिए तथा इसका तापमान भी 25-30 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिए।

(vii) परिवहन के लिए पैकेजिंग: अच्छी तरह से सूखे गूदे को 200 माइक्रोन मोटी प्लास्टिक के बैग में भरकर फिर जूट के बोरों में पैक किया जाना चाहिए।

(viii) परिवहन विधि और समय : परिवहन किसी भी समय किया जा सकता है परन्तु ध्यान रहे कि ऐसे वाहन में करें जिसका उपयोग पूर्व में जानवरों, रासायनिक खाद, कीटनाशकों, सीमेंट और अन्य जहरीले पदार्थों को ढ़ोने में न किया गया हो अथवा उसको अच्छी प्रकार से धोकर ही परिवहन के लिए इस्तेमाल करें।

(ix) अपव्यय/नुकसान को कम करने का तरीका: केवल स्वस्थ फलों का ही संग्रहण करें और कच्चे तथा क्षतिग्रस्त फलों को पक्षियों और पुनरोत्पादन के लिए छोड़ दें।

- पेड़ पर चढ़कर कच्चे फलों को हसिया की मदद से काटकर गिराते हैं और उनको एकत्रित करके ले जाते हैं और कभी कभी पेड़ पर चढ़ने की जहमत भी नहीं उठाते बांस पर बांधे गए हसिया की मदद से शाखाओं को ही काट देते हैं। इस प्रकार कच्चे फल तोड़ने से बीजों के अभाव में जंगल में नए पौधों के अंकुरण की संभावना ही समाप्त हो जाती है परिणामस्वरुप पौधों की संख्या में कमी आती है जिससे इस पर निर्भर अन्य जीव जंतु भी प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार कच्चे फलों को उबालकर गूदा निकालते हैं इसमें तमाम लकड़ी का उपयोग जलाने के लिए किया जाता है इससे जंगल में पौधों के घनत्व में कमी आती और पर्यावरण को नुकसान होता है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- इसका पुनरोत्पादन बीज एवं तने के कटिंग द्वारा किया जाता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- पेड़ बीज वाहक के रूप में चिह्नित किया जाना चाहिए।
- जंगल में इसके छोटे-छोटे पौधों को लोग गोद लें और उनका पालन पोषण करके एक वयस्क वृक्ष बनाने में मदद करें ताकि न सिर्फ वनों का संरक्षण हो बल्कि लोगों की जीविका का भी संरक्षण हो ।
- **निगरानी और मूल्यांकन:-** सुझाये गए उपायों के अनुपालन के लिए हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मुल्यांकन समय समय पर करेगी। बेल का अंकुरण प्रतिशत 35-40 तथा पौध का प्रतिशत 20-25 होता है। अतः वनों में प्रर्याप्त मात्रा वृक्षों की हो कम से कम 10 पेड़ प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में प्रोत्साहित करना चाहिए। क्षेत्र में उपलब्ध पौधों के चारो ओर उचित मेंड़ बनाकर भूमि एवं जल संरक्षण की व्यवस्था करने से पौधों की बढ़त अच्छी होती है।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- बेल के फल का गूदा निकालकर उससे जैम, टॉफी, एवं पेय पदार्थ बनाये जाते है। जिससे उसके मूल्य में 25-40 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इसकी गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।

बेल का जूस

बेल की स्लाईस

बेल का जैम

बेल का टॉफी

3. आचार/चिरोंजी (बुकनेनिया लानजान)

बादाम के विकल्प के रूप में चिरोंजी का स्त्रोत अचार गुठली है। ग्रामीण आजीविका में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है यह मध्य भारत में आदिवासियों की आय का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। वर्ष में एक परिवार लगभग 50 किग्रा. अचार गुठली एकत्रित करता है जिसमें से 20 प्रतिशत घरेलू उपयोग में लेते है शेष को बाजार में बेच देते हैं। ग्रामीण गुठली बेचते है और गुठली को तोड़कर अन्दर से गिरी या बीजी निकालते हैं जिसे ''चिरोंजी'' के नाम से जाना जाता है। एक किग्रा. गुठली से लगभग 200 ग्राम चिरोंजी निकलती है। एक पेड़ से एक सीजन में लगभग 20 से 50 किग्रा. गुठली की पैदावार होती है। मई माह में इसकी विक्रय दर कम (रूपये 80-110 प्रति किग्रा.), जुलाई से सितम्बर में थोडा अधिक (रूपये 125 से 150 प्रति किग्रा.) और सबसे अधिक अक्टूबर में (रूपये 150 से 250 प्रति किग्रा.) होती है। प्रत्येक जिले में गुठली का संग्रहण 3000 क्विंटल से अधिक होता है। थोक में चिरोंजी का भाव 500-700 रूपये प्रति किग्रा. होता है।

1. पौधे का आकार :- अचार गुठली का वृक्ष वनों में पाया जाता है विशेषकर क्षरित बीहड़, खड्डे वाले आवास में पैदा होते हैं। यह पानी भराव वाली जगहों में नहीं पाए जाते हैं सामान्य तौर पर यह सभी प्रकार की मिट्टी में उगते हैं परन्तु क्ले की अधिकता वाली मिटटी में आसानी से उगते हैं। इसकी छाल मगरमच्छ की त्वचा के समान तथा अन्दर से लाल रंग की होती है। ढ़लान वाले पहाड़ों पर वनीकरण के लिए यह एक अच्छी प्रजाति है। इसके अन्दर का भाग कर्नेल (गिरी) खाने वाला भाग होता है। यदि इनको टीन में सील करके रखा जाए तो ये एक वर्ष तक अंकुरित होने की क्षमता रखते हैं।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- कर्नेल (बीज) चिरौंजी के बीज में केलौरी अपेक्षाकृत कम होती है। प्रोटीन, फाइबर और वसा का अच्छा स्त्रोत है। इसमें विटामिन सी, विटामिन बी-1, विटामिन बी-2और नियासिन पाया जाता है। कैल्शियम, फोस्फोरस और लोहा जैसे खनिज तत्वों की उपलब्धता भी होती है।

3. विदोहन की प्रचलित विधियाँ:- फलों को तोड़ने के लिए संग्राहक द्वारा पेड़ पर चढ़कर लकड़ी के डंडे से शाखाओं को हिलाया जाता है और कभी कभी संग्राहक शाखाओं को काट देते है। इससे शाखाएँ टूटती हैं और पेड़ कमजोर होकर गिर जाता है।

4. विनाश विहीन विदोहन का तरीका:- वास्तव मैं जब फल पक जाये (अर्थात उनका रंग काला हो जाये) तो ही उन्हें एकत्र करना चहिये। इसके लिए पेड़ के नीचे प्लास्टिक की या बांस की चादर बिछाकर फलों को एकत्रित किया जा सकता है। जिस तरह से महुवा को एकत्र करने के लिए मछली पकडने वाले जाल को पेड़ के तने से बांध कर महुवा फूल एकत्र किया जाता है उसी प्रकार का जाल यदि चिरोंजी के तने के साथ बांध दिया जाये तो वृक्ष को बिना हानि पहुँचाए पके फलों का एकत्रीकरण किया जा सकता है।

(i) फलों की तुड़ाई के लिए पेड़ों का चयन: फलों के संग्रहण के लिए उन पौधों का चयन करना चाहिए। जहाँ पर अधिक संख्या में पेड़ हों। फलों को उन पेड़ों से नहीं लेना चाहिए जहाँ एक अकेला पेड़ हो।

(ii) फलों के गुण: पके फल लाल से हलके काले रंग के होते हैं और पूर्ण रूप से पकने पर गहरे काले रंग के हो जाते हैं और जब फल गहरे काले रंग के हो जाएँ तभी तोड़ना चाहिए।

(iii) फल तोड़ने की विधि: फल एकत्रित करने से पहले पेड़ के नीचे झाड़ू लगाकर साफ किया जाता है। जमीन पर गिरे फलों

को ही एकत्रित करना चाहिये। संग्राहकों में पेड़ों का सर्व सहमती से बंटवारा कर उनको पके फल तोड़ने की ट्रेनिंग देनी चाहिए। पके फलों को डंडे के एक सिरे पर हंसिया बांधकर तथा ठीक उनके नीचे जाली का बैग बांध कर जिसमें फल गिरें और अधिक होने पर बैग को खाली कर लें, तो वृक्ष को बिना हानि पहुँचाये फलों का एकत्रीकरण किया जा सकता है। वास्तव में जब फल पक जाये (अर्थात उनका रंग काला हो जाये) तो ही उन्हे एकत्र करना चहिये। इसके लिए पेड़ के नीचे प्लास्टिक की या बांस की चादर बिछाकर फलों को एकत्रित किया जा सकता है। जिस तरह से महुवा को एकत्र करने के लिए मछली पकड़ने वाले जाल को पेड़ के तने से बांध कर महुवा फूल एकत्र किया जाता है उसी प्रकार का जाल यदि चिरोंजी के तने के साथ बांध दिया जाये तो वृक्ष को बिना हानि पहुचाँये पके फलों का एकत्रीकरण किया जा सकता है।

(iv) विदोहन का समय एवं उम्र: 12 वर्ष के पश्चात ही पेड़ पर फल लगना शुरू होते हैं। पूर्ण परिपक्व फल अप्रैल-मई माह में ही तोड़ें इसके पूर्व अपरिपक्व फल ना तोड़ें।

(v) फलों का तुड़ाई पश्चात प्रबंधन: फलों को तुड़ाई के पश्चात् उनका प्राथमिक प्रसंस्करण जिसमें सुखाई, सफाई, छंटाई और भंडारण शामिल है। एकत्रित फल या तो पके होते हैं या कच्चे यदि पके फल हैं तो सर्वप्रथम उनको रातभर पानी में भिगोते हैं फिर दूसरे दिन रगड़कर उनका गुदा निकालते हैं और धोकर धूप में सुखाते हैं इसको धुलमा कहते हैं यदि यह हरे रंग की होती है तो कुटमा कहलाती है। कुछ क्षेत्रों में जो शुष्क होते हैं बीजों को छिलका सहित सुखाया जाता है और इस प्रकार की गुठली को पंडी कहते हैं। बीजो को पानी में डालकर गुणवत्ता देखी जाती है क्योंकि अच्छी गुणवत्तायुक्त बीज पानी में डूब जाते हैं जबकि खराब बीज तैरने लगते हैं। धुलमा गुठली की कीमत हमेशा ही कूटमा गुठली से अधिक मिलती है।

- लम्बे समय तक चिरोंजी का भण्डारण एक बड़ी समस्या है क्योंकि इससे वह खराब हो जाती है। यही कारण है की गुठली का व्यापार बढ़ रहा है जिससे चक्की द्वारा चिरोंजी निकाली जाती है। गुठली के रूप में ही चिरोंजी का भण्डारण करना लम्बे समय तक चिरोंजी के गुणबत्ता को सुनिश्चित करता है। गुठली को बोरों में भरकर शुष्क एवं ठन्डे स्थान पर रखे अन्यथा गुठली काली हो जाती है जिस पर फंफूद का संक्रमण होने लगता है। इस प्रकार की गुठली की कम कीमत मिलती है। यदि चिरोंजी को ठीक से भण्डारित न किया गया तो उसका स्वाद और गुणवत्ता दोनों खराब होते हैं।

(vi) परिवहन की विधि और समय: अचार गुठली के परिवहन के लिए सुबह का समय उत्तम होता है क्योंकि इस समय परिवहन के समय धूप कम होने से सूखने से सुरक्षित रहती हैं।

(vii) परिवहन के लिए पैकेजिंग: बीजों को जूट के बोरों में भरकर परिवहन करें।

(viii) अपव्यय/नुकसान को कम करने का तरीकाः गुठली (बीज) की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए जरुरी है कि इसका भण्डारण शुष्क और ठंडी जगह पर किया जावे।

5. पुनरोत्पादन की विधिः- बीज द्वारा प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है की केवल 75 प्रतिशत फल ही लिए जाएं शेष 25 प्रतिशत फलों को पक्षियों और दूसरे जीवों के लिए छोड़ दिया जाता है जो की वनों में पुनरोत्पादन हेतु बीजों का प्रसार करते हैं।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करनाः-

- इस प्रजाति के प्राकृतिक पुनरोत्पादन के लिए आवश्यक है कि पेड़ के सबसे ऊपर के फलों को नहीं तोडना चाहिए। जमीन पर गिरे और टूटे फूटे फलों को भी पक्षियों के लिए छोड़ देना चाहिए जो कि बीजों को जगह-जगह पर पहुँचाने (प्रकीर्णन) का कार्य करते हैं जिससे इसका संरक्षण होता है।
- वनों में इसके छोटे-छोटे पौधों को लोग गोद लें और उनका पालन पोषण करके एक वयस्क वृक्ष बनाने में मदद करें। ताकि न सिर्फ वनों का संरक्षण हो बल्कि लोगों का आजीविका का भी संरक्षण हो।

- निगरानी और मुल्यांकन सुझाये गए उपायों के अनुपालन के लिए हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मुल्यांकन समय समय पर करेगी चिरोंजी में अंकुरण प्रतिशत बहुत कम होता है। इसलिये यह सुननिश्चित करना आवश्यक है कि कितनी पौध खेत में हो जिससे पर्याप्त संख्या में वृक्ष प्रति हेक्टेयर रह सके। इस प्रजाति में बीज का अंकुरण प्रतिशत 30-70 तक पाया जाता है, परंतु पौध प्रतिशत (अंकुरित पौधों में से बढने वाले पौधे) 15 से कम होते हैं। ऐसी स्थिति में

सबसे उचित यह है की उनके जो पौधें मौकें पर उपलब्ध है उन्हें संरक्षित किया जायें जिससे वे बड़े पौधें बन सकें। प्रायः यह देखा गया है कि वनों में चिरोंजी के छोटें-छोंटे पौधे चराई,कटाईं एवं आग से आगे नहीं बढ़ पातें। वनों की सुरक्षा के साथ इन पौधों का सरंक्षण करके वन क्षेत्र में इनकी स्टाकिंग बढ़ाना चाहिये। उल्लेखनीय हैं कि आज चिरांजी सबसे महंगा ड्राय फ्रूट (सूखा मेवा) माना जाता है। अतः जो पौधे हैं उनकी सही देखभाल होनी चाहिये, जिससे प्रति हेक्टेयर कम से कम 1500 से 2000 स्थापित पौधे आ जायें। इन पौधों से सही ढ़ंग से विदोहन करने से नीचे गिरे बीजों से अंकुरण होगा और उनकी देख-रेख से वे बड़े भी होंगे।

- बीट गार्ड को सही मार्गदर्शन देने की आवश्यकता है जिससे न केवल उनकी आग एवं चराई से सुरक्षा करे बल्कि उनके चारों ओर भू एवं जल का काम करावे। जब भी वन क्षेत्र में कोई वानिकी कार्य चल रहा हो तो उसमें ऐसे पुनरोत्पादन को संरक्षित करने तथा उसको बढाने की आवश्यकता है। ए.एन.आर.(A.N.R.) विधि से भी पौधों का संरक्षण किया जा सकता है। लगभग 100-150 स्थापित पुनरोत्पादित संख्या रहने से चिरोंजी के वृक्षों की कमी वनों में नहीं होगी।

7. प्रसंस्करण की संभावनाए:- चिरोंजी से बहुत से व्यंजन तथा अन्य उपयोगी खाद सामग्री तैयार हो सकती है। इसके लिये बाजार उपलब्ध है। चिरोंजी मई माह में एकत्र हो जाती है। यदि उसे सही ढ़ंग से सूखा लिया जाये तथा उसे ऐसे बोरे जिसमें चावल और गेहूँ (बोरे के अंदर उपचारित पत्तली झिल्ली लगी रहती है) में पैक करके रख दिया जाये तथा उन्हें त्यौहारों के समय अर्थात् सिंतबर माह के बाद फोड़कर बाजार में लाया जाए तो कीमत काफी बढ़ोत्तरी मिल सकती है आजकल चिरोंजी फोड़ने के लिये मशीन उपलब्ध है एवं इनकी कीमत लगभग 60,000 रूपये है यदि कोई महिला स्व-सहायता समूह तैयार हो तो उन्हें यह मशीन बहुत कम कीमत पर मिल सकती है इसका रख-रखाव स्व-सहायता समूह को करना होगा। चिरोंजी तोड़कर बाजार में बेचने से कीमत में 30 प्रतिशत वृद्धि हो सकती है औरइसे यदि सीजन के बाद त्यौहारी सीजन में (दशहरा, दिवाली) में 50 प्रतिशत तक अधिक लाभ मिल सकता है।इससे जो खाद्य पदार्थ बनते है वह काम भी महिला स्व-सहायता समूह आसानी से संपादित कर सकती है इसके लिये उनको आर्थिक मद्दकी बहुतसी योजनाए है। उनका प्रशिक्षण, विक्रय के लिये पैकेजिंग इत्यादि के बारे में प्रशिक्षण की व्यवस्था उपलब्ध है।

4. हर्रा (टर्मिनेलिया चेब्युला)

हर्रा का वृक्ष भारतवर्ष के सभी प्रांतों में कहीं न कहीं पाया जाता है। यह उत्तर भारत में बहुलता से उत्पन्न होता है इसे ''हरड़'' एवं ''हरीतकी'' के नाम से भी जाना जाता है यह उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वनों में पाया जाता है भारत में विशेषतः निचले हिमालय क्षेत्र में रावी तट से लेकर पूर्व बंगाल -आसाम तक 5,000 फीट की ऊँचाई पर भी पाया जाता है आयुर्वेद में इसे अमृता, प्राणदा, कायास्था, विजया, मेध्या, आदि नामों से जाना जाता है।

1. पौधे का आकार:- प्रायः इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है किंतु कहीं-कहीं बड़े वृक्ष भी देखने में आते हैं। यह 50-80 फुट तक ऊँचा वृक्ष होता है। छाल गहरे भूरे रंग की, प्रायः लम्बाई में कटी होती है। पत्तियाँ 3-8 इंच लम्बी, 2-4 इंच चौड़ी अण्डाकार होती हैं। फूल छोटे, पीताभ श्वेत, अन्त्य मंजरियों में होते हैं। फल 1-2 इंच लम्बे, अंडाकार और स्वाद में कडवा होता है जिसके पृष्ठभाग पर पाँच रेखायें होती हैं। ये कच्चे में हरे तथा पकने पर पीताभ धूसर हो जाते हैं। प्रत्येक फल में एक बीज होता है। अप्रैल-मई में नये कपोल के साथ पुष्प आते हैं। फल शीतकाल में लगते हैं पक्के फलों का संग्रहण जनवरी से अप्रैल तक करते हैं। फरवरी-मार्च में पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व: - इसका उपयोगी भाग फल होता है हरड़ के फल में टैनिन लगभग 24-32 प्रतिशत होता है। टैनिन के घटकों में चेबुलोजिक एसिड, चेबुलिनिक एसिड, कोटिलेजिन प्रमुख है। इसके अतिरिक्त शर्करा 18 एमिनो एसिड तथा

अल्प मात्रा में फास्फरिक, सक्सिनिक, क्विनिक, शिकिमिक अम्ल होते हैं। बीज मज्जा से एक पीला तेल (36 प्रतिशत) निकलता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- संग्रहकर्ता समय के पूर्व ही कच्चेफलों कासंग्रहण करते है, पेड़ की टहनियों को काटते हैं इसके चलते संग्रह हेतु विनाशयुक्त विधि का उपयोग करने के फलस्वरुप कभी-कभी पूरे पेड़ को भी नष्ट कर देते हैं।

4. विनाश विहीन विदोहन विधि:-

(i) दोहन हेतु पौधों/पेड़ों का चयन करना :

- संग्रहण के लिये चयनित वृक्ष की ऊँचाई 20-25 मीटर होनी चाहिये।
- वृक्ष किसी भी रोग या संक्रमण से मुक्त होना चाहिये।
- वृक्ष में हानिकारक बेल नहीं होना चाहिये।
- फलों के संग्रहण के लिये संग्रहणकर्ताओं को वृक्षों का आपस में बंटवारा कर लेना चाहिये।
- परिपक्ववृक्षों को लाल पेंट से चिन्हित कर देना चाहिये।

(ii) फलों के गुण:

फलों की लम्बाई 3-5 सेमी. होनी चाहिये। परिपक्व फल कड़क और गहरे पीले रंग के होते हैं।

(iii) फल तोड़ने की विधि:

- फलों को तोड़ते समय वृक्ष या उसकी शाखाओं को हानि नहीं पहुँचना चाहिये।
- जो फल परिपक्व हो जाते हैं, वे जमीन पर गिरने लगते हैं और उनका संग्रहण कर लेना चाहिये।
- बांस के बने हुए खरिया या आँकड़ी से जमीन पर गिराकर फलों का संग्रहण करना चाहिये।

(iv) फल तोड़ने का समय

इसके फल नवम्बर-मार्च महीनों के दौरान परिपक्व होते हैं। अतः फलों का विदोहन इन महीनों के पहले न करके, इन्हीं महीनों में किया जाना चाहिये। फलों का संग्रहण प्रातः काल या शाम को किया जाना चाहिये। फलों के संग्रहण का समय संग्रहणकर्ताओं हेतु रेंज अथवा मण्डल के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिये।

(v) फल तोड़ने की सीमा

- केवल 60-75 प्रतिशत फलों का ही विदोहन किया जाना चाहिये, शेष फलों को पक्षियों के लिए छोड़ना चाहिए जो जंगल में बीजों का प्रसार करते हैं। प्रत्येक पेड़ पर कम से कम 20-25 प्रतिशत (150-300) फलों को पुनरोत्पादन के लिये छोड़ देना चाहिए।
- अच्छी गुणवत्ता वाले फलों का ही संग्रहण करना चाहिये तथा खराब फलों को छोड़ देना चाहिए। सबसे ऊपर की शाखाओं पर लगे फलों को छोड़ देना चाहियें।
- हर्रा में फल आने का सही समय नवम्बर-मार्च होता है। इसमें अंकुरण प्रतिशत 40-60 एवं पौध प्रतिशत 15 होता है। इसलिये नर्सरी में जितने पौधों की आवश्यकता है उसे 25-30 प्रतिशत बढ़ाकर आंकलन किया जाये और उसके अंकुरण तथा कम पौध प्रतिशत को ध्यान में रखते हुये उनकी बुवाई की जानी चाहिए।
- नर्सरी में बुवाई के पहले फलों को 12-24 घंटे तक पानी में भिगोकर रखना चाहिए।
- वन क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पौध उपलब्ध होती है यदि इन्हें ANR विधि से जहाँ आवश्यक हो बुवाई करके तथा जो पौधे उपलब्ध हो उनको अपनाकर उनके चारों तरफ भू-जल संरक्षरण कार्य करके भावी फसल के रूप में समृद्ध करना चाहिए।

(vi) फलों का तुड़ाई पश्चात् प्रबंधन:- फलों को एक साफ कपड़े पर फैला लिया जाता है और शेड में सुखाया जाता है। 30-40 दिन तक सुखाने के बाद फल पूरी तरह सूख जाते हैं। इसके बाद उनका चयन आकार एवं गुणवत्ता के अनुसार किया जाता है। जब फल पूर्णतः सूख जाते हैं तब बीजों को अलग करने के लिये रोलर क्रशर का उपयोग किया जाता है। एक वर्ष के लिये फलों का भण्डारण टाट के बोरों में किया जा सकता है लेकिन ताजे बीज जल्दी अंकुरित हो जाते हैं।

(vii) परिवहन के लिए पैकेजिंग

उचित वायु संचरण हेतु फलों को टाट के बोरों में पैक किया जाना चाहिए।

(viii) परिवहन की विधि और समय (रात्रि, सुबह)
फलों का परिवहन शाम को या सुबह किया जाना चाहिए जिससे फलों में नमी समाप्त न हो जाए।

(ix) अपव्यय/नुकसान को कम करने के तरीके
केवल स्वस्थ फलों का संग्रहण करना चाहिए और कच्चे व क्षतिग्रस्त फलों को पक्षियों और प्राकृतिक पुनरोत्पादन हेतु छोड़ दिया जाना चाहिए।

5. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना :-
हरड़ के बीज की अंकुरण क्षमता 40-60 प्रतिशत होती है लेकिन इससे केवल 15 प्रतिशत पौधे ही वृक्षारोपण हेतु उपलब्ध होते हैं अर्थात् इसका पौध प्रतिशत कम (15 प्रतिशत) है। पुनरोत्पादन के लिये निम्नलिखित काम करना चाहियेः-

- पेड़ को बीज धारक के रूप में चिन्हित किया जाना चाहिए।
- छोटे वृक्षों (40 सेमी.से कम परिधि वाले) से फल विदोहन नहीं किया जाना चाहिए।
- प्राकृतिक अंकुरण विधि को अपनाया जाना चाहिए। पौध रोपण के पहले आवश्यकता का आंकलन कर लेना चाहिये। नर्सरी में कितने बीज का उपयोग किया जाये की अंकुरण प्रतिशत 40-60 एवं प्लांट प्रतिशत 15 को मानकर वांछित वृक्षा रोपण हेतु पौधे उपलब्ध हो सकेंगें।

6. निगरानी और मूल्यांकनः-
सुझाये गए उपायों के लिए हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय समय पर करेगी। यह समिति यह भी देखेगी कि कच्चे फल नहीं तोड़े जा रहें हैं एवं ऐसे युवा पौधे (40-60 सेमी. गोलाई के है) उनसे फलो का विदोहन नहीं हो रहा है। विदोहन केवल ऐसे वृक्षों से किया जाये जो कार्य आयोजना में बताये गये हैं। प्रत्येक वृक्ष जिससे फल एकत्र किये जा रहें हैं उनके फोलियज अर्थात पेड़ की छत के करीब 25 प्रतिशत भाग से कोई विदोहन न करें। क्योकि इन बीजों के जमीन पर गिरने से नई पौध बनेगी।

7. प्रसंस्करण की संभावानायें:-
हर्रा को साफ करने के पश्चात् सोलर ड्रायर द्वारा सुखाकर इसके फल का पाउडर बनाकर उपयोग किया जाता है। इसके बाद इसे पॉलिथीन में पैक कर दिया जाता है। इससे इसकी गुणवत्ता अधिक समय तक बनी रहती है एवं इसमें मूल्य वृद्धि 25-40 प्रतिशत तक हो सकती है।

चित्र : हर्रा का पाउडर

5. बहेड़ा (टर्मिनेलिया बेलरिका)

भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में बहेड़ा का वृक्ष पाया जाता है। विशेष कर पतझड़ी वनों में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसे ''विभीतकी'' भी कहते है बहेड़ा की सबसे बड़ी खासियत यह है कि सभी प्रकार की मिटट्ी में इसकी पैदावर की जा सकती है। हालांकि सबसे अच्छी पैदावार नम रेतीली और चिकनी बलुई मिट्टी में होती है।

1. पौधे का आकार:- इसका वृक्ष 20-22 मीटर ऊँचा होता है। पत्तियाँ 8-20 सेमी. लम्बी, 5-8 सेमी. चौड़ी व अण्डाकार होती हैं। 5-8 सेमी. लम्बी सीकों पर नन्हे फूलों की मंजरियाँ आती हैं। पुष्प मई माह में आता है। जनवरी-फरवरी माह में फल पक जाते हैं। फल 2-5 सेमी. लम्बा व अंडाकार होता है। सूखने पर धारीदार या हल्का पंचकोणीय दिखता है। फल के भीतर एक बीज होता है। फरवरी-मार्च में पत्ते झड़कर ताम्र वर्ण के नई पत्तियाँ निकलती हैं।

2. उपयोगी भाग व सक्रिय तत्व:- इस पौधे में उपयोगी भाग फल होता है। इसके फल में 17-20 प्रतिशत टैनिन पाया जाता है। इसके बीज मज्जा में 37-38 प्रतिशत चमकीले पीले रंग का गाढ़ा तेल निकलता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- संग्रहकर्ता समय के पूर्व ही कच्चेफलों का संग्रहण करते है, पेड़ की टहनियों को काटते हैं इसके चलते संग्रह हेतु विनाशयुक्त विधि का उपयोग करने के फलस्वरुप कभी-कभी पूरे पेड़ को भी नष्ट कर देते हैं।

4. विनाश विहीन विदोहन विधि:-

(i) दोहन हेतु पौधों/पेड़ों का चयन करना :

- फलों के संग्रहण के लिये संग्रहणकर्ताओं को वृक्षों का आपस में बंटवारा कर लेना चाहिये।
- परिपक्व वृक्षों को लाल पेंट से चिन्हित कर देना चाहिये जिससे उसका फलों के संग्रहण हेतु विदोहन किया जा सके।
- फलों को बाँस की छड़ी में अक्ती (हसियादार) लगाकर नीचे वाले फल एकत्र किया जा सकता है। ऊपरी छत के फलों को वैसे ही छोड़ देना चाहिए जिससे वे पक्षियों तथा अन्य जीव-जन्तुओं के काम आ सके। जो फल नीचे गिरेंगे वे आगे चलकर अंकुरित होगें और यदि उनका सही संरक्षण एवं संवर्धन किया जाये तो वे पुनरोत्पादन का भाग बन सकेगें।

(ii) फलों के गुण

फल सूखने पर धारीदार या पंचकोणीय दिखता है। इन्हीं फलों का संग्रहण किया जाना चाहिये जो परिपक्व हों। फलों का बीज अण्डाकार होता है और प्राकृतिक रूप से कड़ा होता है। इसका फल गूदेदार होता है।

(iii) फल तोड़ने की विधि

- फलों को तोड़ते समय वृक्ष या उसकी शाखाओं को हानि नहीं पहुँचना चाहिये।
- साफ-सुथरे फल इकट्ठा करने के लिए और उन्हें धूल से बचाने हेतु जमीन को गोबर और मिट्टी के लेप से लीपना चाहिए अथवा टाट् के बोरों या काली पॉलीथिन शीट से ढंकना चाहिए।
- जो फल परिपक्व हो जाते हैं, वे जमीन पर गिरने लगते हैं और उनका संग्रहण कर लेना चाहिये।

(iv) फल तोड़ने का समय

- फल नवम्बर-फरवरी महीनों के दौरान परिपक्व होते हैं। अतः फलों का विदोहन इन्हीं महीनों में किया जाना चाहिये।
- फलों के संग्रहण का समय संग्रहणकर्ताओं हेतु रेंज अथवा मण्डल के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिये।

(v) फल तोड़ने की सीमा

- केवल 60-75 प्रतिशत फलों का ही विदोहन किया जाना चाहिये, शेष फलों को पक्षियों के लिए छोड़ना चाहिए जो जंगल में बीजों का प्रसार करते हैं।
- सबसे ऊपर की शाखाओं पर लगे फलों को छोड़ देना चाहिये।

(vi) फलों का तुड़ाई पश्चात् प्रबंधन:- संग्रहित फलों को जमीन पर एक साफ कपड़े पर फैला लिया जाता है और 10-15 दिनों के लिये धूप में सुखाया जाता है। फल का ऊपर कवच डंडे की सहायता से अलग किया जाता है और उसे पुनः 4-5 दिन तक सुखाया जाता है। इसके बाद फलों को टाटा के बोरों में रखकर ऊँचे स्थान पर भण्डारण किया जाता है जिसमें नमी 10 प्रतिशत तथा तापमान 25 डिग्री होना चाहिये।

(vii) परिवहन के लिए पैकेजिंग:- उचित वायु संचरण हेतु फलों को टाट के बोरों में पैक किया जाना चाहिए।

(viii) परिवहन की विधि और समय:- फलों का परिवहन शाम को या सुबह किया जाना चाहिए जिससे फलों में नमी समाप्त न हो जाए।

(ix) अपव्यय/नुकसान को कम करने के तरीके

केवल स्वस्थ फलों का संग्रहण करना चाहिए और कच्चे व क्षतिग्रस्त फलों को पक्षियों और प्राकृतिक पुर्नउत्पादन हेतु छोड़ दिया जाना चाहिए।

5. पुनरोत्पादन की विधि :- बहेड़ा के पौधे कि अंकुरण दर 70-80 प्रतिशत होती है और इससे 55 प्रतिशत पौधे वृक्षारोपण हेतु उपलब्ध होते है। पुनरोत्पादन के लिये निम्नलिखित काम करना चाहियेः-

- पेड़ को बीज धारक के रूप में चिन्हित किया जाना चाहिए।
- छोटे वृक्षों (50 सेमी.से कम परिधि वाले) का विदोहन नहीं किया जाना चाहिए।
- प्राकृतिक अंकुरण विधि को अपनाया जाना चाहिए।
- पौध रोपण के पहले आवश्यकता का आंकलन कर लेना चाहिये। नर्सरी में कितने बीज का उपयोग किया जाये की अंकुरण प्रतिशत 70-80 एवं प्लांट प्रतिशत 55 को मानकर वांछित वृक्षारोपण हेतु पौधे उपलब्ध हो सकेंगें।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करनाः-

सुझाये गए उपायों के लिए हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय समय पर करेगी। यह समिति यह भी देखेगी कि कच्चे फल नहीं तोड़े जा रहें हैं एवं ऐसे युवा पौधे (40-60 सेमी. गोलाई के है) उनसे फलो का विदोहन नहीं हो रहा है। विदोहन केवल ऐसे वृक्षों से किया जाये जो कार्य आयोजना में बताये गये हैं। प्रत्येक वृक्ष जिससे फल एकत्र किये जा रहें हैं उनके फोलियज अर्थात पेड़ की छत के करीब 25 प्रतिशत भाग से कोई विदोहन न करें। क्योंकि इन बीजों के जमीन पर गिरने से नई पौध बनेगी।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:-

बहेड़ा को साफ करने के पश्चात सोलर ड्रायर द्वारा सुखाकर इसके फल का पाउडर बनाकर उपयोग किया जाता है। इसके बाद इसे पॉलिथीन में पैक कर दिया जाता है। इससे इसकी गुणवत्ता अधिक समय तक बनी रहती है एवं इसमें मूल्य वृद्धि 25-40 प्रतिशत तक हो सकती है।

चित्र : बहेडा का पाउडर

2. महुआ (मधुका लोंगिफोलया)

महुआ एक भारतीय उष्णकटिबन्धीय वृक्ष है जो उत्तर और मध्य भारत के मैदानी इलाकों और जंगलों में बड़े पैमाने पर पाया जाता है। महुआ का वैज्ञानिक नाम मधुका लोंगिफोलिया है। महुआ के फूलों से शराब बनायी जाती है। इसे संस्त में 'माध्वी' और ग्रामीण क्षेत्रों में आजकल 'ठर्रा' कहते हैं। महुआ की शराब भारत के अनेक आदिवासी क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय पेय है। उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश के झाबुआ की महुआ की शराब काफी प्रसिद्ध है। यह शराब पूरी तरह से रसायन (केमिकल) से मुक्त होती है। इसी तरह, छत्तीसगढ़ के बहुत से भागों में भी महुआ शराब बनाई जाती है जिनमें बिरेझर (राजनांद्गांव) और टेमरी (दुर्ग) में प्रमुख हैं।

1. **पौधो का आकार:-** यह एक तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है जो लगभग 12 से 15 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ सकता है। इसके पत्ते आमतौर पर वर्ष भर हरे रहते हैं। यह शुष्क पर्यावरण के अनुकूल ढ़ल गया है यह मध्य भारत के उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन का एक प्रमुख पेड़ है। आदिवासी के लिए महुआ का पेड़ बहुत महत्व रखता है। आदिवासी लोग न सिर्फ खाने के लिए बल्कि ईंधन के रूप में भी महुआ का उपयोग करते हैं। इसमें मार्च के माह में सफेद रंग के छोटे-छोटे फूल लगते हैं। इसके फूल के असंख्य गुण हैं, लेकिन मध्य भारत में इस फूल का इस्तेमाल मशहूर पेय महुआ वाइन बनाने के लिए किया जाता है। महुआ में औषधीय और चिकित्सकीय गुणों से भरपूर तत्व मौजूद हैं। यह मौसमी फ्लू, बुखार, मिर्गी, केंसर जैसी तमाम समस्याओं का एक समाधान है।

महुआ फूल– यह खाने योग्य होते हैं और जनजातीय आहार की एक महत्वपूर्ण सामग्री से होते हैं। आदिवासी परंपरागत रूप से महुआ को एक प्रमुख खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग करते रहे हैं। इसे कच्चा और पकाकर खाया जाता है (उबला हुआ, तला हुआ या अन्य सामग्री के साथ पकाया जाता है)। कई बार इससे लड्डू भी बनते हैं। हालांकि, महुआ का सबसे लोकप्रिय उपयोग शराब बनाने में है। आसुत शराब इस प्रकार हमें मोहुली के रूप में जाना जाता है और सभी अवसरों के दौरान मध्य प्रदेश के आदिवासियों के लिए पेय का एक प्रमुख स्रोत है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:– इसके उपयोगी भाग बीज, फूल एवं फल हैं। वसा (हैल्दी फैट), प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर प्रचुर मात्रा पाया जाता है। महुआ बीज ऐतिहासिक रूप से महुआ साबुन निर्माण उद्योग में प्राकृतिक कठोर वसा का सबसे बड़ा स्वदेशी स्त्रोत रहा है। यह खाद्य प्रयोजनों एवं परिष्कृत रूप में भी उपयोग किया जाता है। बीज से पूरे राज्य में तेल निकाला जाता है।

3. प्रचलित विदोहन विधि:– महुआ का संग्रहण जमीन पर ही कर लिया जाता है। जिससे उसमें धूल, मिट्टी जैसी आदि अशुद्धियाँ महुआ की गुणवत्ता को नुकसान पहुँचाती है।

4. विनाशविहीन विदोहन की विधियाँ:–

महुआ के फूल को एकत्र करने के लिये मछली पकड़ने वाले नायलॉन के जाल को पेड़ के नीचे दो भाग (वृक्ष के तने के दोनो ओर) में लगाया जाता है। संग्रह किया हुआ महुआ अच्छी गुणवत्ता का होता है एवं यह एक उच्च कीमत (रु. 35/-किग्रा) प्राप्त करता है। महुआ का उपयोग खाद्य उत्पादों के प्रसंस्करण के लिए किया जा सकता है। चूंकि पूरा पेड़ जाल से ढ़ंका नहीं जाता है, बचे हुए फूलों को जंगली जानवरों द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है। महूआ फूल प्रातः अपने आप वृक्ष से गिरता है महूआ के वृक्ष ग्रामीण आपस में बाँट लेते है।

- जमीन की सफाई और जलने से जंगल में आग लगती है जिससे मिट्टी में नमी की मात्रा कम हो जाती है और माइक्रोफ्लोरा और जीवों की मृत्यु हो जाती है। जंगल की आग के परिणामस्वरूप महुआ के पेड़ों का उत्थान लगभग नहीं या कम हुआ है। महुआ के फूलों पर निर्भर जंगली जानवरों को उनके भोजन से वंचित करने के लिए संग्रहकर्ता जमीन से सभी फूलों को इकट्ठा करते हैं। गिरते फूलों को इकट्ठा करने के लिए जाल का उपयोग करते हैं।
- महुआ की गुणवत्ता कम बाजार मूल्य (6 रुपये प्रति किग्रा) प्राप्त करने के संग्रह की इस पद्धति से प्रभावित होती है। खाद्य उत्पादों के लिए निम्न श्रेणी के महुआ का प्रसंस्करण लगभग असंभव है। संग्रह की पारंपरिक विधि में परिवार के सभी सदस्य शामिल होते हैं और इसमें समय (संग्रहण सत्र में हर दिन लगभग 8 घंटे) लगता है।

विदोहन पश्चात प्रबंधन

- महुआ का फूल जब पेड़ से पक कर गिरता है, उसके बाद इस फूल को पूरी तरह से सुखाया जाता है। इसके बाद सभी फूलों को बर्तन में पानी में मिलाकर तथा इसमें आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के पेड़ों के छाल, फूल, पत्ते आदि मिलाकर 5-6 दिन तक रखा जाता है। उसके बाद उस बर्तन को आग पर गरम किया जाता है और गरम होने पर जो भाप निकलती है उसको नली के द्वारा दूसरे बर्तन में एकत्रित किया जाता है। भाप ठंडी होने पर महुआ की शराब बनती है।

- परम्परागत तरीकों से महुआ भण्डारण जूट की बोरियों में रखकर बंद कमरे में किया जाता है, जिसमे नमीं एवं तेज धूप नहीं पहुंच पाती हो। लंबे समय के बाद (6-10 महीने) उपयोग में लाने वाले महुआ को अधिक सुरक्षित तरीके से भण्डारण किया जा सकता है। इस तरह का भण्डारण बड़े व्यापारी ही कर पाते है।

- आजकल बड़ी जगह पर जैसे रायपुर, जबलपुर, आदि जिलों में महुआ के फलों का भण्डारण कोल्ड स्टोरेज (शीतल भण्डारण) में भी किया जाता है।

- खाद्य पदार्थ बनाने हेतु महुआ को टीन या प्लास्टिक की चौकियों में (500-1000 किग्रा) किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अच्छे गुणवत्ता वाले पलिथीन बैग (200 माइक्रोन) में भर कर अथवा जूट बैग या प्लास्टिक के बैग में भर कर किसी अच्छे भण्डार में रखा जा सकता है।
- बोरो को जमीन से (2-4 इंच) ऊचें लकड़ी के पट्टे पर रखा जाता है ताकि जमीन से नमी सोख न पाए। इस तरह के भण्डार को बाहर की धूप से पूरी तरह बचाकर रखना जरुरी है।

5. प्राकृतिक पुनरोत्पादन की विधि:- महुआ का पुनरोत्पादन बीज द्वारा किया जाता है। महुआ का फूल जब पेड़ से पक कर गिरता है, तो उसमें से 25 प्रतिशत भाग जमीन पर ही छोड़ दिया जाता है। जिससे प्राकृतिक पुनरोत्पादन हो सके एवं इसके बीज को पॉलिथीन में भी उगाया जाता है। जब यह 10-15 सेमी. ऊँचा हो जाता है तो इसे प्रत्यारोपित कर दिया जाता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- बीज देने वाले पौधों को चिन्हित किया जाना चाहिए।
- पुनरोत्पादन के लिये 25 प्रतिशत फलों का भाग जमीन पर ही छोड़ दिया जाना चाहिये ताकि भविष्य के लिये नये पौधे विकसित हो सकें।
- प्राकृतिक पौधे को अपनाया और प्रवृत्त किया जाना चाहिए।
- निगरानी एवं मूल्याकंन जरूरी हैं।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:-

महुआ से पौष्टिक लडडु तथा महुआ पर आधारित बेकरी बनाई जा सकती है। बेकरी में पौष्टिक बिस्कुट, टोस्ट एवं केक तैयार किये जाते है इसकी खपत ग्रामीण क्षेत्रों में है। इस प्रकार की बेकरी छिंदवाडा जिले के तामिया, मंडला एवं डिण्डोरी मुख्यालय में अच्छी तरह से चल रही है। बिस्कुट एक पौष्टिक उत्पाद है जिसे महिला स्व-सहायता समूह आसानी से चला सकती है। प्रायः यह तर्क दिया जाता है की जब महुआ अच्छी तरह से मछली के जाल पर इकठा करके बाँस की चटाई पर सुखा लिया जाता है तो उसका मूल्य प्रति-किलो 50-60 रुपये तक मिल जाता है ऐसी स्थिति में उसका कोई प्रंसस्करण व्यवहारिक नहीं है।यहां यह उल्लेखनीय है की महुआ आधारित बेकरी से जो सामग्री बनती है वह वर्षभर ग्रामीणों को उपलब्ध होती है तथा स्व-सहायता समूह को नियमित रुप से आमदनी होती रहती है। देहाती क्षेत्रों में महिलाऐं एवं बच्चे प्रायः खून की कमी के कारण एनिमिया से ग्रसित होती है। पौष्टिक बेकरी के माध्यम से उन्हें आयरन, प्रोटिन तथा अन्य पदार्थ भरपूर मिल जाता है और वह भी उचित कीमत एवं उनके द्वार पर। इसलिये इसका फायदा प्रसंस्करण से लिया जाना चाहिये।

7. इन्द्रजो (होलरहेना प्यूब्सेंस)

यह एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है जो बॉटनी के भाषा में ऐपोसायनेसी परिवार से संबंधित है। इसे ''कुटज'' भी कहते हैं। ''ग्रीन इंडिया मिशन'' के क्षेत्र में मध्यप्रदेश के वन क्षैत्रों में पाया जाता है यह आर्युवेद की बहुती सी दवाईयों के बनाने में उपयोग लाया जाता है। यह हिमालय, बंगाल, आसाम, उडीसा, पश्चिम भारत एवं मध्य भारत के पर्णपाती वनों में बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसके सेवन से किसी प्रकार के अवांछनिया प्रभाव नहीं देखे गये हैं। इसका स्वाद कडवा होता है लेकिन बहुत सी ला-इलाज रोगों में सिद्ध आर्युवेदिक उपचार के लिये इसका व्यापक उपयोग होता है। इस पेड़ की छाल का उपयोग बवासीर एवं त्वचा रोगों के नियंत्रण के लिये प्रायः उपयोग में लाया जाता है। छाल का उपयोग पेशाब से सबंधित रोगों में भी किया जाता है। हड्डी के जोडों में दर्द एवं इससे सबंधित अन्य शारीरिक रोगों में भी इलाज के काम आता है। इतने तमाम रोगों के निदान हेतु आर्युवेदिक दवा बहुत कम पायी जाती हैं और इसलिये इसे वनों से बहुतायत में इक्ठ्टा किया जाता है।

अधिक से अधिक एकत्र करने में प्रायः इसका विनाशकारी विदोहन भी हो जाता है जिससे यह सूखने लगता है अतः इसके विनाशविहीन विदोहन की अत्यंत आवश्यकता है।

1. पौधे का आकार:- इन्द्रजो एक पतझड़ वाली झाड़ीनुमा जो कभी-कभी उचित मिट्टी एवं रहवास में छोटें पेड़ के रूप में पतझड़ वाले मिश्रित वन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन सबके बावजूद इसके व्यापक उपयोग, व्यवसायीकरण इत्यादि के कारण इसके छाल की बढ़ती मांग इत्यादि से इस पौधे के नष्ट होने या कम होने का खतरा बढ़ता जा रहा है। लगभग 2-3 दशक पहले इसका उपयोग इतने बड़े पैमाने पर विभिन्न औषधियों में कम होता था। आज-कल उपरोक्त वर्णित बीमारियाँ चारों तरफ दिखती हैं। प्रत्येक क्षेत्र में कोई ना कोई बीमारी के रोगी मिल ही जाते हैं। गत वर्षों में आयुष के द्वारा समर्थित अनुसंधान से जब इसका महत्व पता चला तब से इस पौधें के लिये मण्डराते खतरे कि ओर लोगों का ध्यान गया हैं। आज इसके विनाषविहीन विदोहन की बड़ी आवश्यकता है जिससे यह बहुमूल्य औषधीय पौधा संरक्षित रह सकें।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इसका उपयोगी भाग फूल, बीज एवं छाल है। छाल का उपयोग अत्यधिक औषधीयों के रुप में किया जाता है। मधुमेह के नियंत्रण एवं उपचार में इसके व्यापक उपयोग के कारण इसका बाजार में बहुत महत्व हैं। इसके अतिरिक्त डायरिया, पेचिश, यकृत की बीमारी, अनियंत्रित वात सहित पेट की समस्या और खूनी बवासीर इत्यदि में भी उपयोगी है।

3. विनाशकारी विदोहन की प्रचलित विधियां:- वर्तमान में अधिकतर इस पौधे का विनाशकारी विदोहन हो रहा है। इसमें पेड़ की छाल की अधिक से अधिक मात्रा एकत्र करने के लालच में पूरे पेड़ की छाल को संग्राहकों द्वारा निकाल लिया जा रहा है। जिससे पौधे की आयु कम हो जाती है और वह शीघ्र सूख जाता है। कई बार छोटे वृक्षों को काट लिया जाता है। अतः आज आवश्यकता इस बात की हैं कि पेड़ की छाल इस तरह से छोटे-छोटे भाग में निकाली जाये की पहला भाग की छाल जब पूरी तरह से पेड़ पर पुनः आ जायें तभी दूसरा भाग की छाल को निकाला जायें। बाजार में बढ़ती मांग के कारण पूरे वृक्ष तथा उसकी टहनियों कांटकर पूरे तने की छाल निकाल ली जा रही है। इससे वृक्ष नष्ट हो गये हैं और धीरे-धीरे उनकी संख्या वन क्षेत्रों में कम हो रही है। इसे यदि शीघ्र नियंत्रित नहीं किया गया तो यह प्रजाति विलुप्त होने की कगार पर पहुंच जायेगी।

4. विनाशविहीन विदोहन की विधियां:- सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी पेड़ से कितनी छाल एकत्र की गई है। छाल की मात्रा निर्धारण उस वन क्षेत्र में इन्द्रजो की स्टॉकिंग पर निर्भर करेगा। यदि यह विरल है तो संरक्षण सबसे बड़ी प्राथमिकता होगी। यदि स्टॉकिंग प्रति हेक्टेयर 1500-2000 के मान से है तो कुछ वृक्ष जो अच्छी तरह से विकसित है उनकी तनें के लंबाई में लगभग 10-20 प्रतिशत तक छाल 2-3 वर्षों के अंदर निकाला जा सकता है। परंतु यदि वृक्ष की स्टॉकिंग प्रति हेक्टेयर 500 से कम है तो प्रत्येक 10 वृक्ष में से केवल एक वृक्ष के मान से छाल की निकासी संवहनीय हो सकती है। इससे अधिक निकासी अंततः इस प्रजाति के सततीय विकास में बाधक बनेगा। इस वृक्ष के बहुत सी बीमारियों में उपयोग होने से इस पर बहुत अधिक असर देखने को मिल रहा है। इसका बाजार मूल्य पिछले एक दशक में लगभग 100 प्रतिशत बढ़ चुका है और इसी अनुपात में इसके निकासी की मात्रा भी प्रभावित हुई है।

छाल की निकासी:- तीन विधियों से छाल की निकासी की जा सकती है:-

- विधि-1:- पूरे तने को चार बराबर भाग में बाँट कर केवल एक भाग से ही छाल निकासी की गई (25 प्रतिशत)।

- विधि-2:- पूरे तने को तीन बराबर भाग में बांटा गया और इनमें से केवल एक भाग से छाल की निकासी की गई (33 प्रतिशत)
- विधि-3:- इसमें छाल को लंबाई में एक छोड़ करके दूसरी ओर उल्टी दिशा में अन्य भाग में छाल की निकासी की गई।

उपरोक्त तीनों विधियों में से छाल निकालकर यह स्थानीय रूप से पता लगाया जाना चाहिये कि कौन सी विधि से छाल निकाले गये भाग जल्दी घाव भर लेते हैं और किसमें अधिक समय लगता है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि जब तक घाव नहीं भरते तब तक अगले भाग में छाल निकासी न की जाये।

एक अनुमान के अनुसार पूरे देश में कुटेज की लगभग 1000-2000 मेट्रिक टन प्रतिवर्ष विभिन्न दवा निर्माताओं द्वारा वांछित होती है। इतनी बड़ी मात्रा में छाल निकाल कर ले जाने के कारण धीरे-धीरे इस प्रजाति की कमी वनों में देखी जा रही है। बहुत से संस्थान तथा गैर-शासकीय संस्थाओं द्वारा इसके विनाशविहीन विदोहन की उचित पद्धतियां विकसित करने में संलग्न है। प्रशिक्षण के माध्यम से भी इस पर ध्यान दिया जा रहा है।

5. प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:- पुनरोत्पादन के लिये बीज को नर्सरी या सीधे नर्सरी बेड में लगाया जाता है। नये बीज का अंकुरण क्षमता अधिक होता है। एक वर्ष से अधिक पुराने बीज की अंकुरण क्षमता कम होती है। सामान्यतः बीज के अंकुरण का समय दो सप्ताह होता है। नये बीज अंकुरण 60-80 प्रतिशत होता है और एक वर्ष पुराने बीज का अंकुरण 25-30 प्रतिशत होता है। समय के साथ अंकुरण और घटता है और इसलिये संग्रहित पुराने बीज को नर्सरी में लगाना उचित नहीं है। इतना अधिक उपयोगी एवं व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जाना वाला कोई अन्य औषधीय पौध नहीं है इसलिये वन प्रबंधन को यह ध्यान रखना चाहिये की इसके विनाशयुक्त दोहन किसी तरह से न होने पावें । यदि ग्रामीण अधिक एकत्रीकरण के प्रयोजन से विनाशयुक्त दोहन करते हैं तो उन्हें प्रशिक्षित करके उत्तरदायित्व पूर्ण प्रबंधन एवं उपयोग के लिये वे सभी उपाय करना चाहिये जो आवश्यक है। इनके बीज कम से कम पूरे एक हेक्टेयर क्षेत्र में समान रूप से फैले इसके लिये कम से कम 500-1000 स्वस्थ पौधे फूलने एवं फलने दिया जाये। इसकी छाल निकालने के पूर्व यदि बीज पक कर गिर जाये तो उसके अंकुरण से नया पौधा बन सकता है। वन अमले को चाहिये की वन सुरक्षा समितियों के माध्यम से महिला स्वः-सहायता समूह बनाये और इसके प्राकृतिक पुनरोत्पादन के लिये प्रयास करें। ए.एन.आर (ANR) तकनीक से नये पौधों को अंगीकृत करकें उनके चारों ओर भूमि एवं जल संरक्षण तथा सुरक्षा का काम महिला स्वः-सहायता समूह को दिया जाना चाहिये। उनके परिश्रम के एवज में कुछ पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये। एक हेक्टेयर क्षेत्र में 1500-2000 स्थापित पौधे तो उचित होगा।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- बीज देने वाले पौधों को चिन्हित किया जाना चाहिए।
- अव्यस्क पौधे जो की 2 साल से कम्र उम्र के है उन्हें विदोहन के लिये चयन नहीं किया जाना चाहिये।
- प्राकृतिक पौधे को अपनाया और प्रवृत्त किया जाना चाहिये।
- निगरानी एवं मूल्याकंन जरूरी हैं।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:-

इंद्रजो की छाल को सोलर ड्रायर में सूखाकर इसका पाउडर बनाया जाता है और पॉलीथिन में पैक किया जाता है जिससे इसकी गुणवत्ता बनी रहे एवं इसके मूल्य वृद्धि की संभावनायें बन सके।

चित्र : इंद्रजो छाल का पाउडर

8. वायविडंग; (ऐम्बेलिया राइबीज)

यह एक झाड़ीनुमा पौधा है, जो अनेक औषधीय गुणों से भरपूर होता है। यह औषधीय पौधा भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में जैसे निचले और मध्य हिमालय, पश्चिमी घाट, दक्कन, दक्षिण भारत, असम, आंध्रप्रदेश, अरूणाचल प्रदेश आदि में पाया जाता है। भारत देश के अलावा यह भूटान, चीन पाकिस्तान और नेपाल में भी पाया जाता है।

1. पौधे का आकार:- यह बेल के आकार की झाड़ी होती है, इसकी जड़े हल्के भूरे रंग की और बालों वाली होती है। इसका तना सफेद भूरे रंग का होता है एवं परिपक्व तनें की परिधि 45 से 72 सेमी. होती है। इसकी पत्तियाँ अण्डाकार होती है, जिसकी लंबाई 6 से 14 सेमी. एवं चौडाई 2 से 4 सेमी. होती है। इस पौधे का पुष्प 5 पंखुडियां वाला होता है तथा रंग सफेद एवं पीला होता है। फल बेरी की तरह होता है। जिसका आकार अण्डाकार होता है यह नर्म एवं रसीले होते है सूखा होने की स्थिति में. इसकी बाहरी आवरण में झुर्रियां आ जाती हैं।
वायविडंग, आधुनिक और आयुर्वेदिक दवाईयों में उपयोग में लाया जाता हैं जिसके कारण इस प्रजाति की मांग अधिक होती है। जंगलों की अंधा-धुंध कटाई के कारण इस प्रजाति का अस्तित्व अत्याधिक खतरे में है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इस पौधे का उपयोगी भाग फल होता है। इसका सक्रिय तत्व एम्बलिन है। यह कृमिरोग, उदररोग, एवं श्वास रोग आदि में लाभप्रद होता है। चर्म रोगों में वायविडंग का भीतरी और बाहरी दोनों भाग प्रयोग होते है। वायविडंग पाचन क्रिया को सुधारता है, इसलिये कुष्ठ और चर्म रोगों पर इसका अनुकूल प्रभाव होना स्वाभाविक है। अतिसार और संग्रहणी में वायविंडग का क्वाथ बनाकर देते है।

3. विदोहन की प्रचलित विधियाँ:- वर्तमान में संग्रहकर्ता समय के पूर्व ही फलों को कच्चे एवं अधपके किसी भी रुप में इनका संग्रह कर लेते हैं संग्रह हेतु टहनियों को काटकर ही ले आते हैं जिससे पेड़ ओर फल दोनों ही क्षतिग्रस्त हो जाते है।

4. संवहनीय विदोहन की विधि/नियम:- विदोहन की विधि निम्नानुसार है -

- विदोहन के लिये पौधों का चयन- विदोहन के लिये 1 से 2 मीटर ऊँचाई वाली झाड़ियों को चयनित करके उन्हें कांटा जाता है एवं रोग मुक्त झाडियों को ही चयनित किया जाता है।
- विदोहन के लिये पौधों के गुण- परिपक्व फल का ही विदोहन करना चाहिये, क्योंकि इसमें कच्चे फल की तुलना में औषधीय गुण अधिक होता है।
- विदोहन के लिये उपयोग में लाई जाने वाली विधियाँ- विदोहन के लिये एक विशेष प्रकार की हंसिया बाँस की 3-4 मीटर लंबी छड़ी में जोड़ देना चाहिये। उपरी सिरे पर हंसिया के ठीक नीचे एक झोला लगा देना चाहिये। इस प्रकार हंसिया से वांछित फल तोड कर झोले में एकत्रित कर लिया जाता है। इस प्रकार न तो फल जमीन पर गिरता है और न ही फल तोड़ने के लिये विनाशयुक्त विदोहन की कार्यवाही करनी पड़ती है।
- यह संसाधन उतना ही निकाला जाये जिससे क्षेत्र में भविष्य में भी वायविंडग के नये पौधे लगभग 2 हजार से अधिक हो। यह तभी संभव है जब विदोहन से जुड़े सभी हिस्सेदार तथा वन अधिकारी, संयुक्त वन प्रबंधन समिति, महिला स्व-सहायता समूह, संग्राहक, बिचौलिया एवं व्यापारी इसमें सहयोग दें।
- परिवहन के लिये पैकेजिंग- जूट के बोरे, टीन के कनस्तर, कार्टून, बाँस की टोकनी इत्यादि का उपयोग पैकेजिंग एवं परिवहन के लिये किया जाता है। सूखें हूयें फलों को साफ सुथरे जूट की थैली में जिसमें गेहूँ चावल का भण्डारण होता है, उसी प्रकार के बैग में इसका भी भण्डारण किया जाना चाहिये।
- विदोहन के पश्चात् की जाने वाली कार्यवाही- विदोहन के पश्चात् यथासंभव छायें में चादर अथवा जूट के बोरे से बनी टाट्पटटी पर किया जाना चाहिये। यदि सही ढ़ंग से विदोहन किया गया है पौधे परिपक्व हैं तो छांये में सुखाने से इनकी औषधीय गुणवत्ता कम नहीं होगी। धूप में सूखाने से ना केवल पौधों का रंग खराब होता है वरन् उनकी गुणवत्ता भी प्रभावित होती हैं इसलिये सभी संग्राहकों को हवादार छायें में ही सूखाने के लिये बताना चाहियें। गांव के बुजुर्ग भी इस तरह से मार्गदर्शन दे सकते हैं, कि उपज का रंग एवं गुणवत्ता के लिये केवल छायें में ही फलों को सूखायें।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- वायविडंग का पुनरोत्पादन बीज के द्वारा तथा तने की कंटिग के द्वारा किया जाता है। बीज का अंकुरण अत्याधिक समय लेता है। बीज रोपने के लगभग 65 दिनों के उपरांत इसका अंकुरण होता है, इसलिये इसका पुनरोत्पादन तने के कटिंग की लेयरिंग व रूटिंग द्वारा किया जाता है। तने की कटिंग से पुनरोत्पादन आसान होता हैं। पुनरोत्पादन को बनाये रखने के लिये आवश्यक है की जब पौधा लगभग 2 वर्ष का हो जाये तो उसे नवंबर अथवा दिसंबर माह में विदोहन करना चाहिये। विदोहन के समय यह आवश्यक है कि ऐसे पौधे जिनमें फलियाँ पक गई हों और उनके बीज स्वस्थ दिख रहें हैं तो ऐसे पौधों को चयनित करके क्षेत्र में छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार वायविडंग की नई पौध छोड़े गये पौधों से तैयार हो जायेगी और यही वांछित कार्यवाही है, जिससे संवहनीय विदोहन का पालन किया जा सकता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- बीज देने वाले पौधों को चिन्हित किया जाना चाहिए।
- अव्यस्क पौधे जो की 2 साल से कम उम्र के है उन्हें विदोहन के लिये चयन नहीं किया जाना चाहिये।
- प्राकृतिक पौधे को अपनाया और प्रवृत्त किया जाना चाहिये।
- निगरानी एवं मूल्याकंन जरूरी हैं।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- वायविडंग की बेरी को तोडकर उसमें से बीज को निकाल कर उसे सोलर ड्रायर/टनल ड्रायर में सुखाया जाता है। फलों का हैमर मिल के द्वारा पाउडर बनाया जाता है फिर इसे एल डी पी ई पॉलीथिन में पैक कर दिया जाता है। जिससे की उसकी गुणवत्ता अच्छी रहती है एवं मूल्य में वृद्धि की संभावनायें बढ़ जाती है।

चित्र : बायबिडंग बीज एवं पाउडर

9. सीताफल (अन्नोना स्क्वामोसा)

शरीफा या सीताफल (कस्टर्ड ऐपल) वन क्षेत्रों का अत्यन्त स्वादिष्ट एवं स्वास्थवर्धक फल है। इसका वानस्पतिक नाम ''अन्नोना स्क्वामोसा'' है। यह भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता है। विशेष रूप से महाराष्ट्र, मध्य-प्रदेश, आंध्रप्रदेश, में इस फल को ज्यादा पाया जाता है। यह आमतौर पर ढ़ालू जमीन जैसे पहाड़, नदी, के जगह पर देखा जा सकता हैं। यह एकमात्र ऐसा फलदार एवं झाड़ीनुमा पेड़ होता हैं, जिस पर किसी भी प्रकार के रोग नहीं लगते हैं।

जैसा कि उपर बताया गया है यह पथरीली एवं पहाडी क्षेत्र में जहाँ कुछ मिट्टी हो आसानी से उग जाता हैं। मध्यप्रदेश के ऐसे स्थानों में सीताफल की झाडियाँ बहुतायत से पाई जाती हैं। छिंदवाडा तथा सिवनी जिलों में सागौन एवं गैर-सागौन के बिगडे वन क्षेत्रों में जहॉ एक समय लैन्टाना की झाडियाँ फैली थी वहॉ सीताफल काफी तेजी से बढ़ रहा है। इसकी ऊँचाई औसतन 06 मीटर से अधिकतम

2 मीटर तक मिल सकती है। कुछ बडे वृक्ष भी मिलते है। इसकी माँग बढने के साथ-साथ ग्रामीणों द्वारा पड़त भूमि पर इसे बढ़ाने के लिये भू एवं जल संरक्षण, मिट्टी चढ़ाना, कटिंग करना इत्यादि कार्यो से इसको फैला रहे है। यदि सही समय पर मृदा कार्य तथा सूखी टहनियों की छँटाई कर दी जाये तो उसमें बड़े फल लगते है। छपरा रेंज, उतर सिवनी वन मंडल एवं दक्षिण छिंदवाडा वन मंडल में इस फल का औसत वजन 400-500 ग्राम तथा कभी-कभी 700 ग्राम तक का पाया जाता है। आजकल अच्छी तरह से देख-रेख के फलस्वरूप फल की उत्पादकता एवं उनका आकार बढ़ता देखा जा रहा है। प्रति झाड़ी/छोटा पेड़ से औसतन 5-7 किलोग्राम तक उपज होती है। सीताफल बुधनी, होशंगाबाद तथा बैतूल जिले में भी पाये जाते है। चूँकि यह आजकल वन क्षेत्रों में भी फैल गये है, इसलिये इसे लघुवनोपज मानकर इसका एकत्रीकरण, पैकेजिंग एवं विक्रय सुनिश्चित किया जाना चाहिए। यह फल विभिन्न स्टोर में डिब्बा बंद होने पर अच्छी कीमत पर बिकता है, इसलिये आवश्यक है कि वन क्षेत्रों में एकत्र करने वाले वनवासियों की संस्था बनाकर जहाँ आवश्यक हो एफ.पी.ओ. जैसी संस्था के माध्यम से विक्रय किया जाये। इससे संग्राहकों को उचित मूल्य मिल सकता है। बड़े-बड़े स्टोर, सही फलों का चयनकर उसे डिब्बा बंद पैकेजिंग करते हैं और अत्यंत ऊँचे भाव पर बेचते हैं। यह कार्य महिला स्व-सहायता समूह बड़े अच्छे ढ़ंग से करके प्रति परिवार 15,000-20,000 रुपये तक कमा सकते हैं। फल वाले वृक्ष वनों में तथा पड़त भूमि पर बहुतायत से पाये जाते हैं इसके लिये बाजार अच्छा है तथा इसके स्वाद एवं पुष्टिकर के कारण लोग इसे हाथों-हाथ खरीदने के लिये तैयार हैं।

1.पौधे का प्रकारः- यह पेड़ बहुत पहले अन्य देशों से लाया गया था बाद में इसकी खेती अब पूरे भारत में की जाती है और दक्षिण भारत में अपने आप भी उग आता है इसका पेड़ छोटा और तना साफ छाल हल्के नीले रंग की होती हैसीताफल का वृक्ष पर्णपाती सहनशील 5-6 मी.उंचा होता है। पौधे लगाने के चार से पाँच वर्ष में यह फलने लगते हैं। सीताफल के संकर बीज उत्पादन के लिए ग्रीष्म ऋतु उपयुक्त होती है। पोली हाऊस में जनवरी में बीज बुआई करके फरवरी के पहले सप्ताह में पोध रोपाई की जाती है। पूर्ण विकसित वृक्ष से 70-90 फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं।

2.उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्वः- इसका उपयोगी भाग फल हैं, जिसमें काफी कैलोरी पायी जाती हैं। यह आयरन और विटामिन सी से भरपूर होता है। इसके इस्तेमाल से कई तरीके के रोगों से छुटकारा मिलता हैं। इसके बीज, पत्ते, छाल सभी को औषधि के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इसमें बहुत से औषधीय गुण (लौह, विटामिन एवं अत्यधिक कैलोरी) होते है।

3.विनाश विहिन विदोहन की विधि :-
यह आवश्यक है कि उनकी झाड़ियों को बिना नुकसान पहुँचाए प्रति वर्ष रखरखाव (निदाई, गुडाई, सुखी टहनीयों का काटना, गोबर के खाद देना) से इनकी सतत उत्पादकता बनी रह सकती है। इस प्रजाति में फल की पैदावार बढाने के लिये बरसात के पहले अच्छी प्रूनिंग (Prunning) किया जाना चाहिए। जब तक इन्हें काटा या जलाया नहीं जाता तथा केवल साफ-सफाई ही कर दी जाती है तो भी इनकी उत्पादकता में कोई कमी नही आती है। यह ऐसा लघुवनोपज है जिसे किसान अपने घर के उपयोग में भी ला सकता है तथा इसको प्रति वर्ष अच्छी कीमत पर बेच भी सकता है। इसके गूदे से अच्छी किस्म का पौष्टिक कस्टर्ड बनाया जा सकता है। सीताफल का एकत्रीकरण पर्याप्त आकार होने के बाद अक्टूबर माह में किया जाता है। उस समय फल अधपक्का होना चाहिए। बाकी फल पेड़ में छोड़ देना चाहिए। आम की तरह से ये भी लगभग 15-20 दिनों के अंतर्गत एकत्र किये जाते है।

4. विदोहन के पश्चात् प्रबंधनः- सीताफल के फल से एक मशीन के द्वारा गूदे (Pulp) और बीज को अलग निकाला जाता है। उस निकले हुए गूदे में कड़वाहट ना आयें और सुरक्षित रखने के लिए इस मशीन का उपयोग किया जाता है। इस मशीन से गूदे को एक साल तक सुरक्षित रखकर बाजार मे अच्छे भाव पर बेच सकते है। इस गूदे का उपयोग आइसक्रीम, रबड़ी और पेय पदार्थ बनाने में किया जाता है।

5.पुनरोत्पादन की विधिः- सीताफल का पुनरोत्पादन फिलहाल बीज एवं कटिंग से होता है। कुछ लोग ग्राफटिंग के द्वारा भी पौधे तैयार कर रहे है। अभी इसमें बहुत से पुनरोत्पादन से संबंधित कार्य करना है।

कुछ दक्षिण की संस्थाएं इसका टिशू कल्चर से भी पुनरोत्पादन कर रहे है। फिलहाल मध्यप्रदेश में प्राकृतिक रूप से पौधे उगते है अतः उनको बढाने के लिये ए.एन.आर.विधि से रखरखाव करके तथा समय पर मिट्टी चढाने एवं टहनीयों के कटाई से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। बीजों को वन क्षेत्रों के किनारे बनाई गई पत्थर की पशु अवरोधक दीवाल में जहाँ-जहाँ मिट्टी हो वहाँ बोना चाहिए। इसकी कटिंग पॉलिथिन की थैली में तैयार की जा सकती है। इसमें यदि कटिंग के आकार का सही चुनाव किया जाये तथा उन्हें उपयुक्त हार्मोन से उपचारित किया जाये अथवा गोबर से बाँध दिया जाये तो उनमें जड आ जाता है। ऐसे कटिंग से लगभग 6 माह में विभिन्न क्षेत्रों में लगाने लायक पौधे तैयार हो जाती है। मध्यप्रदेश के जिन क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पौध उपलब्ध है उन्हें अच्छी देखरेख (गोबर की खाद, गुडाई, निदाई, सुखी टहनीयों को काटकर निकालना इत्यादि) से पौधे शीघ्र स्थापित हो जाते है और वे एक वर्ष के अंदर फल देने लगते है।

6. प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- इन्हें काटा या जलाया नहीं जाता तथा केवल साफ-सफाई ही कर दी जाती है तो भी इनकी उत्पादकता में कोई कमी नहीं आती है।
- उनकी झाडियों को बिना नुकसान पहुँचाए प्रति वर्ष रखरखाव (निदाई, गुड़ाई, सुखी टहनीयों का काटना, गोबर के खाद देना) से इनकी सतत उत्पादकता बनी रह सकती है।

7. प्रसंस्करण की संभावनाये:- महिला स्व-सहायता समूह द्वारा सीताफल के गूदे को निकालकर इससे रबडी, पाउडर, आईस्क्रीम, इत्यादि खाद्य पदार्थ बनाऐ जाते है। जिससे इसके मूल्य में वृद्धि होती है एवं गुणवत्ता बढ़ जाती है।

10. किवांच (मुकुना प्रुरियंस)

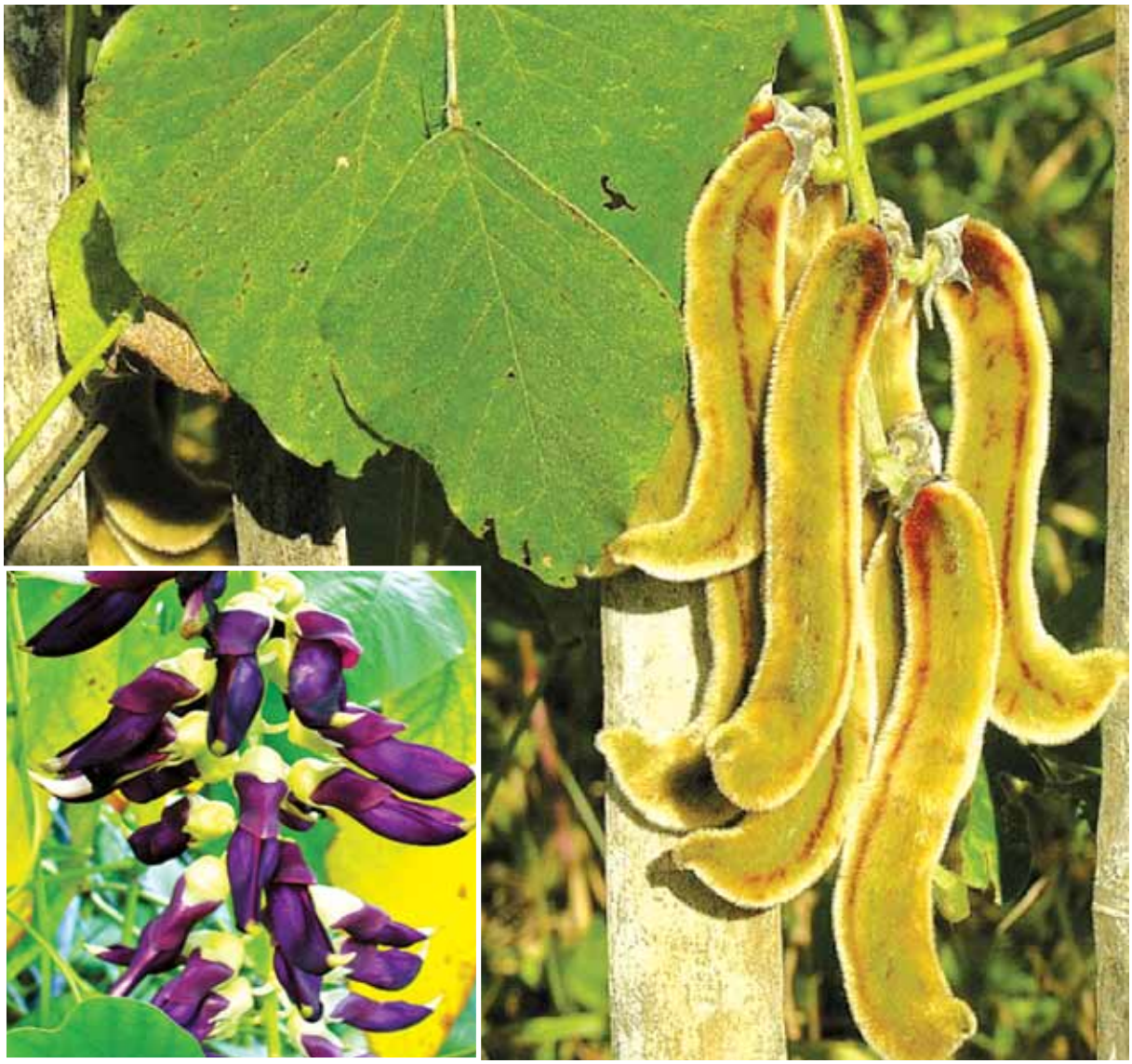

किवांच भारत के समस्त मैदानी क्षेत्रों में जंगली लता के रूप में पाया जाता है। किवांच की मुख्यतः दो प्रजातियां होती हैं। एक प्रजाति जो जंगलों में होती है। इस पर बहुत अधिक रूऐं होते हैं, जबकि दूसरी प्रजाति की खेती की जाती है। दूसरी प्रजाति में कम रूऐं होती हैं। जंगली केंवाच पर घने और भूरे रंग के बहुत अधिक रोएं होते हैं। अगर यह शरीर पर लग जाए तो बहुत तेज खुजली, जलन होने लगती है। इससे सूजन होने लगती है। इसमें एल-डोपा रसायन पाया जाता है। इसके बीज, पत्ती, जड़, रोम सभी का प्रयोग औषधि में होता है। बीज में 'लेसिविन' ग्लूकोसाइड तथा 0.5 प्रतिशत एल्केलाइड भी पाये जाते हैं। बीज में गहरे भूरे रंग का तेल पाया जाता है। मध्य और दक्षिणी भारतीय राज्यों में किसान इसे चारे और हरी खाद वाली फसल के रूप में उगाते हैं।

1. पौधे का आकार:- कौंच बीज एक फैलने वाला फलीदार पौधा है। जो भारत, चीन के उष्ण कटिबंधीय वातावरण के साथ-साथ एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के अन्य गर्म स्थानों में पनपता है। यह एक फलीदार खाद्य फसल है जो फैबेसी पादप परिवार से संबंधित है। पौधा आमतौर पर 15 मीटर तक की ऊँचाई तक पहुंचता है, लंबी, लचीली शाखाओं के साथ, चमकीले हरे पत्ते बारी-बारी से व्यवस्थित होते हैं और सफेद फूल लगते हैं। कौंच बीज के पौधे का सबसे व्यापक रूप से खाया जाने वाला हिस्सा बीज की फली/फलियां हैं, जो एक मोटी बालों वाली परत से ढ़की होती हैं और चार से छह बीजों को शामिल करती हैं, जो खाने योग्य भी होते हैं एवं गहरे भूरे रंग के होते हैं। बीज अंडाकार होते हैं, थोड़ा पार्श्व रूप से संकुचित होते हैं, एक लगातार आयताकार, फनिक्युलर हिलम, धब्बों के साथ गहरे भूरे रंग के होते हैं; आमतौर पर फल 12-18 सेमी लंबा, 08-12 सेमी चौड़ा, कठोर, स्पर्श करने में चिकना, आसानी से टूटने योग्य नहीं होता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- कौंच बीज के पौधे का सबसे व्यापक रूप से खाया जाने वाला हिस्सा बीज की फली/फलियां हैं, फसल में एल्केलाइड पाये जाते है। जिसके कारण अधिक मात्रा में यह विष है किन्तु कम मात्रा में दवा है। इसका मुख्य प्रयोग दमा एवं सांस के रोगों की दवा निर्माण में होता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग बेहोशी, शिशु जन्म तथा आंख की दवायें बनाने में होता है। किंवाच एक उपयोगी फसल है। इसका प्रयोग कामोत्तेजक, मूत्र रोग तथा दुर्बलता के लिये किया जाता है। फलियाँ सब्जी के रूप में तथा जड़ एवं रोम-पेट के कृमि तथा पित्त रोग दूर करते हैं। यह उत्तम लाभदायक फसल है। आमवाती रोगों में बीजों के काढ़े का उपयोग किया जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधियां:- इसका विदोहन संग्राहकों द्वारा हाथ से या टहनी से फलियों को झड़ाकर किया जाता है। जिससे परिपक्व एवं अपरिपक्व दोनों ही टूट जाती है जिससे कि उत्पादन में कच्ची फलियां भी मिश्रित हो जाती है और अवैज्ञानिक तरीके से इन फलियों का विदोहन करने से पुनरोत्पादन में कमी आती है। सभी वर्गों की फलियों का विदोहन किया जाता है।

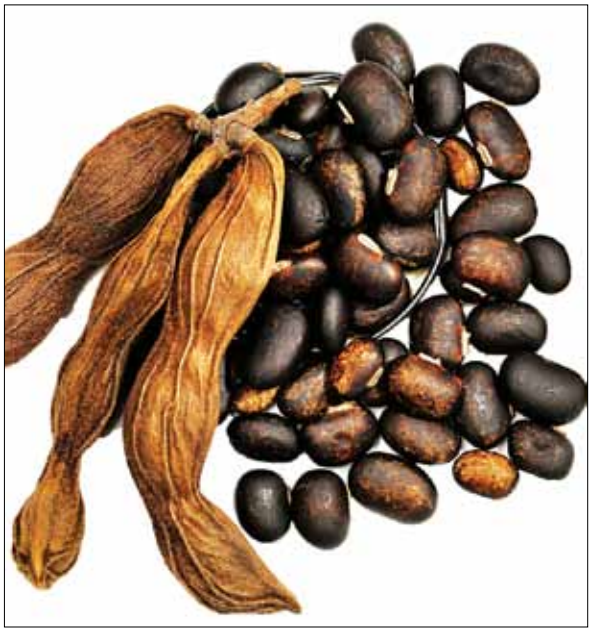

4. विनाशविहीन विदोहन की विधियां:-

- फली से बीज एकत्र करने के लिए परिपक्व फली को काटा जाता है। कटाई के समय फली का रंग भूरा-भूरा हो जाता है जो तुड़ाई के लिए परिपक्वता का संकेत देता है।
- आम तौर पर एक फली में 3-7 बीज पाए जाते हैं और प्रति पुष्पक्रम में 5-6 फली आम तौर पर उपलब होते हैं। इस प्रकार, प्रति पौधे लगभग 25-30 गुच्छों की कटाई की जा सकती है।
- इस प्रकार खेत से काटी गई फली को 4-7 दिनों के लिए धूप में सुखाया जाता है ।
- बीजों में लगभग 7-8 प्रतिशत नमी तक पहुँचने के लिए बीजों को छाया में सुखाया जाता है।
- बीजों को आम तौर पर जूट से बने बोरियों में संग्रहित किया जाता है और फिर वायुमंडलीय नमी के अवशोषण से बचाने के लिए पलिथीन से ढ़क दिया जाता है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:-

यह अत्याधिक फैलने वाली प्रजाति है एवं यह एक बार खेत के चारों ओर लगा दी जाये अथवा वन में इसकी झाडी हो तो यह जब तक काटकर जला न दिया जाये तब तक यह गिरे हुये बीजों से वर्ष दर वर्ष फलता फूलता रहेगा। फिर भी सावधानी के तौर पर कुछ बीज की फलियाँ जो पक गई है उन्हें तोडने के बजाय खेत की किनारे ही छोड देना चाहिए। यदि वन क्षेत्र में इन झाडियों के सुखने के पश्चात हल्की आग लग भी जाये तो इनके बीज एक तरह से जल्दी अंकुरित हो सकते है और उससे पुनरोत्पादन में फायदा मिल सकता है। फिलहाल यह पौध प्रजाति संकटग्रस्त नहीं है। ध्यान इस बात का देना है कि इसकी अत्याधिक कटाई एवं आग लगने से इसके धीरे-धीरे कम होने की संभावना हो सकती है।

6. प्रजाति का प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना :-

- बीज देने वाले पौधों को चिन्हित किया जाना चाहिए।
- पुनरोत्पादन के लिये 25 प्रतिशत फलों का भाग जमीन पर ही छोड़ दिया जाना चाहिये ताकि भविष्य के लिये नये पौधे विकसित हो सकें।
- प्राकृतिक पौधे को अपनाया और प्रवृत्त किया जाना चाहिए।
- निगरानी एवं मूल्याकंन जरूरी हैं।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:-

महिला स्व-सहायता समूह अपने संग्रहण के मूल्य को 25-30 प्रतिशत तक बढ़ा सकते है यदि वे बीज को साफ करके सूखा लें तथा उनको खरल में कूटकर पाउडर बना लें। इस उत्पाद को वे आसानी से व्यापारी को अधिक दाम में बेच सकती है।

चित्र : सफेद पाउडर एवं बीज

11. मालकांगनी (सेलास्ट्रस पैनिकुलाटस)

मालकांगनी (सेलास्ट्रस पैनिकुलाटस) परिवार से संबंधित है। यह एक बड़ा एवं ऊँचा पौधा है, जिसकी ऊँचाई 18 मीटर तक होती है और तने का व्यास 23 सेमी. तक होता है। भारतीय यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा में बीजों के तेल का उपयोग पारंपरिक औषधि के रूप में किया जाता है। प्रायः यह लुप्त औषधीय पौाा है जो पूरे भारत में वितरित किया जाता है, ज्यादातर उष्णकटिबंीय जंगलों और उपोष्णकटिबधीय हिमालय में 1400 मीटर तक पाया जाता है। इस पौधे की प्रजाति अधिकांशतः हिमालयी पथ में झेलम से पूर्व की ओर 2000 मीटर (समुद्र तल से ऊँचाई) तक पायी जाती है। यह आध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पश्चिमी घाट, गुजरात, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु में व्यापक रूप से तथा जम्मू कश्मीर और हिमाचल प्रदेशमें भी पाया जाता है।

1. पौधे का आकारः- पौधे का तना चौड़ा और छाल पतली एवं भूरी होती है। शाखाएँ बाल रहित होती हैं, जिनमें कई अलग-अलग सूक्ष्म सफेद बिंदु होते हैं जिन्हें लेंटिकेल कहा जाता है। पत्तियां सरल, वैकल्पिक, अंडाकार से आयताकार-अण्डाकार, लगभग 5-15

x 2-8 सेमी; शीर्ष तीव्र, तीक्ष्ण या कुंठित, दांतेदार मार्जिन, बाल रहित, पार्श्व नसें 5-8 जोड़े, पतला; पत्ती के डंठल लगभग 3 सेमी लंबे होते हैं।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय घटक:- इसका उपयोगी भागबीज होता है। इसमें एंटी माइक्रोबियल गुण होते हैं, जो बैक्टीरिया और कवक दोनों के खिलाफ प्रभावी हैं। मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र के लाभों के लिए जाना जाता है। इसके तेल का प्रयोग याददाशस्त में सुधार के लिये किया जाता है इसमें एंटी डिप्रेसेंट गुण होता है, जो दर्द में उपयोगी है। यह त्वचा एवं बालों के लिये भी उपयोगी है।

3. प्रचलित विदोहन विधि:- इसके फलों के संग्रह हेतु संग्रहकर्ता समय के पूर्व ही संग्रह कर लेते हैं जिससे उसका उपयोगी भाग पूरी तरह से पक नहीं पाता एवं अधपका बीज अनुपयोगी रहता है, पेड़ की टहनियों को काटते हैं जिससे पेड़ों को काफी नुकसान पहुँचता है।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधि:- मालकांगनी के फल आने की अवधि अक्टूबर से जनवरी तक है। इस अवधि को ध्यान में रखकर ही विदोहन करना चाहिये। इसके पहले विदोहन करने से बाजार मूल्य कम मिलता है क्योंकि ऐसे पौधों में वांछित औषधीय गुण पर्याप्त नहीं पाये जाते है।

भण्डारण:- इसके बेर/फल को धूप में या ओवन ड्राईंग विधि द्वारा सूखाकर बीजों की गुणवत्ता को बनाए रखा जाता है। बीजों के भण्डारण से पहले उसके ऊपरी आवरण एवं गूदे को बीज से अलग कर उन्हें भण्डारित किया जाता है।

5. प्राकृतिक पुनरोत्पादन की विधि:- इसके बेर/फलका विदोहन 80-90 प्रतिशत तक किया जाए शेष 10-20 प्रतिशत भाग पुनरोत्पादन के लिये छोड़ दिया जाना चाहिए। जिससे कि भविष्य में यह प्रजाति संकट में न आये। इस प्रजाति के प्राकृतिक पुनरोत्पादन के लिए आवश्यक है कि पेड़ के सबसे ऊपर के बेर/फल को नहीं तोड़ना चाहिए। जमीन पर गिरे और टूटे फूटे बेर/फल को भी पक्षियों के लिए छोड़ देना चाहिए जो बीजों का जगह जगह पर पहुँचाने (प्रकीर्णन) का कार्य करते हैं जिससे इसका संरक्षण होता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- सुझाये गए उपायों के अनुपालन के लिए हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मुल्यांकन समय-समय पर करे।
- जंगल में इसके छोटे-छोटे पौधों को लोग गोद लें और उनका पालन पोषण करके एक वयस्क पौध बनाने में मदद करें ताकि न सिर्फ लघुवनोपज की जैवविविधता का संरक्षण हो, बल्कि लोगों की आजीविका का भी संरक्षण हो सके।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- मालकांगनी के बीजों को साफ करके सोलर ड्रायर में सुखाकर, हैमर मिल की सहायता से पाउड़र बनाकर इसका उपयोग किया जाता है। इसके बीजों से तेल भी बनाया जाता है। जिससे की इसके मूल्य वृद्धि की संभावनायें बढ़ जाती है।

चित्र : मालकांगनी के बीजों का पाउडर एवं तेल

12. सतावर (ऐस्पेरेगस रेसीमोसस)

आर्युवेद में इसे 'औषधियों की रानी' माना जाता है। सतावर अथवा शतावर (ऐस्पेरेगस रेसीमोसस) लिलिएसी कुल का एक औषधीय गुणों वाला पादप है। इसे 'शतावर', 'शतावरी', 'सतावरी', 'सतमूल' और 'सतमूली' के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत, श्रीलंका तथा पूरे हिमालयी क्षेत्र में उगता है। इसका पौधा अनेक शाखाओं से युक्त काँटेदार लता के रूप में एक मीटर से दो मीटर तक लम्बा होता है। इसकी जड़ें गुच्छों के रूप में होतीं हैं। वर्तमान समय में इस पौधे पर लुप्त होने का खतरा है।

1. पौधे का आकार:- सतावर भारत वर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली बहुवर्षीय आरोही लता है। सतावर की पूर्ण विकसित लता 10-15 मीटर ऊँची होती है। इसके मूल से कई लताएँ एक साथ निकलती हैं। इसके तने लकड़ी के समान कठोर, गेहुँ या भूरे रंग के सीधे तथा छोटे कांटे युक्त होते हैं। इसके पत्ते काफी पतले तथा सुइयों के आकार के नुकीले होते हैं। सितम्बर-अक्टूबर माह में इसमें गुच्छों में पुष्प आते हैं तथा इसके बाद जनवरी-फरवरी में फल आते हैं। इसका फल मटर के छोटे दाने के आकार का एवं रंग हरा होता है और पकने पर लाल रंग का हो जाता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इसका उपयोगी भाग कंद है जिसमें सैफोनिन पाया जाता है। सतावरीन पालिसायकेलिक, एल्कोलाइड और एस्पेरोगामाइन भी पाया जाता है। सतावर का इस्तेमाल दर्द कम करने के रूप में किया जाता है। इसकी जड़ तंत्रिका प्रणाली और पाचन तंत्र की बीमारियों के इलाज, ट्यूमर, गले के संक्रमण, ब्रोंकाइटिस और कमजोरी में फायदेमंद होती है। यह पौधा कम भूख लगने व अनिद्रा की बीमारी में भी फायदेमंद है। अतिसक्रिय बच्चों और ऐसे लोगों को जिनका वजन कम है, उन्हें भी ऐस्पैरेगस से फायदा होता है। इसे महिलाओं के लिए एक बढ़िया टॉनिक माना जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधिः-

- कंद के संग्रहण हेतु पौधो को पूरी तरह जड़ से उखाड़ दिया जाता है जिससे पौधे के कंद के साथ-साथ डिस्क भी निकल जाता है। पौधे पुनः नहीं उग पाते हैं।
- इस विनाशकारी विदोहन के कारण जमीन से जड़े बाहर आ जाती हैं तथा सूख जाती हैं। इन्हें पुनर्जीवित होने के लिए उचित वातावरण नहीं मिल पाता है तथा पौधे नष्ट हो जाते हैं।
- कंद का संग्रहण पूरे वर्ष किया जाता है। औसतन एक परिवार वर्ष में 40 दिन कंद संग्रह करने में लगा रहता है। अवैज्ञानिक तरीके से कंदों का संग्रहण होने के कारण वनों में पौधे कम होते जा रहे हैं।
- विदोहन के समय के लिए कोई पाबंदी नहीं होती है। इसी प्रकार सभी आयु वर्ग के पौधों का विदोहन किया जाता है। विदोहन का तरीका भी अवैज्ञानिक है तथा अपरिपक्व पौधे से भी कंद निकाला जाता है। इससे भविष्य में पौधों की उत्पादन क्षमता पर संकट खड़ा हो सकता है।

4. विनाश विहीन विदोहन विधियाँः-

(i) विदोहन हेतु पौधों का चयन करना- 3 वर्ष से अधिक आयु वाले परिपक्व सतावर के पौधों का चयन कंदों के विदोहन हेतु किया जाता है। पौधों की पहचान कॉलर क्षेत्र पर स्थित तने की मोटाई (5 सेमी. से कम न हो) का निरीक्षण करके किया जा सकता है। जिन पौधों में अधिक फूल और फल लगे हैं उन्हें पुनरोत्पादन के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए ऐसा करने से उस क्षेत्र में पौधों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो सकेगी।

(ii) विदोहन के लिए अपनाई जाने वाली विधि-विदोहन के लिए उपयोगी उपकरण निम्नानुसार है-

- कुल्हाड़ीः इसका उपयोग सतावर के आसपास उग आए अनावश्यक झाड़, खरपतवार हटाने के लिए किया जाता है।
- फावड़ाः जिस मिट्टी से कंद ढंका हुआ है, उसे खोदने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।
- कुदालीः गड्ढे से मिट्टी बाहर निकालने के लिए और जड़ कटने के बाद उसे पुनः ढंकने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।
- जमीन खोदने का यंत्र (हस्तचलित): मिट्टी में मौजूद कंदों के गुच्छों को अलग करने हेतु इसे उपयोग में लाते हैं।
- दस्ती केंचीः पौधो की डिस्क के पास मौजूद कंदों की छंटाई के लिए इसका उपयोग होता है।

विदोहन हेतु विशेष कार्य (परिचालन)

- तने के आसपास कार्य करने हेतु स्थान बनाने के लिए अनुपयोगी पौधों को जमीनी स्तर पर कांट कर अलग कर दिया जाता है। पौधे के आसपास 1 मीटर तक के क्षेत्र की सफाई की जाती है।
- लता में लगे हुए डिस्क से 30 सेमी. दूरी से खुदाई करनी चाहिए जिससे डिस्क को नुकसान न पहुंचे। डिस्क को सुरक्षित बचाते हुए खुदाई कर अंगुठे की मोटाई के कंदों को प्राप्त करना चाहिए। फावड़े से काटते समय कंदों की सुरक्षा हेतु सावधानी रखनी चाहिए।
- उन्हीं परिपक्व कंदों की कटाई की जानी चाहिए जिनकी लम्बाई 15 सेमी. हो एवं गोलाई अंगुठे की मोटाई के बराबर हो।
- चयन किये गये कदों को सावधानीपूर्वक केंची से काटकर डिस्क से अलग कर लेना चाहिए डिस्क को क्षति न पहुंचे। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि खराब कंद या सड़े हुए कंद डिस्क से अलग कर लिये जाऐं नहीं तो यही कंद स्वस्थ कंदों को रोगग्रस्त कर सकते हैं।
- कंदों को प्राप्त करने के बाद खोदे गये गड्ढों को अच्छी तरह से भर दें तथा मिट्टी हल्के से दबा दें जिससे शेष कंदो का विकास होता रहे और परिपक्व कंद प्रतिवर्ष प्राप्त होते रहें।

(iii) विदोहन का समय एवं वर्ष-3 वर्ष के परिपक्व पौधों का ही विदोहन करना चाहिए। कंदों का संग्रहण अक्टूबर-नवम्बर माह के पश्चात् करने से कंद को नुकसान नहीं पहुँचता तथा कंद के विकास के लिये पर्याप्त समय मिलता है। मानसून के पहले संग्रहण पूर्ण कर लेना चाहिए तथा जुलाई से अक्टूबर नवम्बर तक कोई निकासी नहीं करना चाहिये।

(iv) विदोहन की सीमा- पौधों से 80 प्रतिशत ही कंदों को निकालना चाहिए तथा 20 प्रतिशत मात्रा डिस्क में छोड़ देना चाहिए जिससे निरंतर हमें कंद प्राप्त होता रहे।

(v) विदोहन के पश्चात् प्रबंधन- कंदों को 4-5 दिन के लिए धूप में सुखाया जाता है। भण्डारण के कुछ माह बाद इसे बेच दिया जाता है। कंद जितना सफेद होगा, उसकी उतनी अधिक कीमत प्राप्त होगी। लाल रंग होने पर कीमत कम प्राप्त होगी।

(vi) परिवहन हेतु रखरखाव- सतावर के सूखे कंदों को अच्छी तरह बोरी, कनस्तरया कार्टून में रखें जिससे कंदों को नमी मिलती रहे।

(vii) परिवहन की विधि और समय (रात्रि, सुबह)- अधिक मात्रा होने पर सतावर के कंद को दिन में कभी भी ट्रक द्वारा दवाई कम्पनियों को भेजा जा सकता है। कम मात्रा होने पर बैलगाड़ी का उपयोग परिवहन हेतु किया जा सकता है।

(viii) अपव्यय/नुकसान को कम करने के तरीके-

- 3 वर्ष से कम आयु के अपरिपक्व कंदों का दोहन नहीं करना चाहिए।
- जब सतावर के पौधों में फल पककर लाल होने लगें, तब दोहन करना चाहिए।
- 15 सेमी.से अधिक लम्बाई वाले केवल 80 प्रतिशत कंदों का ही दोहन करना चाहिए।
- जमीन में कंदों के लिए खुदाई सुरक्षित तरीके से करें। खुदाई उतनी ही करें जितनी कंद निकालने हेतु आवश्यक हो।
- राइजोम को सुरक्षित रखते हुए कंदों का दोहन करना चाहिए। यह भी सुनिश्चित करना चाहिये कि राइजोम खंडित न हों।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- सतावरी का पुनरोत्पादन बीजों तथा पुराने पौधों की जड़ों से किया जाता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- 3 वर्ष से कम आयु के कंदों का दोहन नहीं करना चाहिए।
- विदोहन के समय टहनीयों को न तोड़े।
- निगरानी और मूल्यांकन- सुझाये गए उपायों के लिए हितधारकों की एक समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय समय पर करेगी।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- सतावरी की जड़ को साफ करके धोया और 50 डिग्री सेल्सियस के तापमान पर कैबिनेट के अंदर सुखाना चाहिए। फिर एक हैमर मिल में ठीक से पाउडर करके सुखा लेना चाहिए। इसे एक एल. डी. पी. ई. बैग में पैक कर कमरे के तापमान पर संग्रहित किया जा सकता हैं। इस प्रकार के प्रसंस्करण से मूल्य में 30-50 प्रतिशत की वृद्धि बेचने पर मिल सकती है।

चित्र : जड़ो का सूखा सेम्पल

13. सफेद मूसली (क्लोरोफाइटम बोरीविलेनम)

सफेद मूसली भारत वर्ष के कई प्रांतों के जंगलों में प्रायः बरसात के दिनों में उगती है। गुजरात, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में यह मुख्य रूप से पाया जाता है। यह एक वर्षीय पौधा है।

1. पौधे का आकार:- इसमें कंद, क्राउन, पत्तियां और फूल जैसे विभिन्न भाग होते हैं। पौधों के क्राउन के पास से गुच्छों में कंद निकलती है। कंद सफेद रंग की होती है। सितम्बर के अंतिम सप्ताह तथा अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में इसके पत्ते तथा ऊपरी हिस्सा सूख जाता है। यह भूमिगत रहकर प्रसुप्त अवस्था में रहती है। अगस्त माह में फूल निकलता है। इसका बीज बहुत छोटा होता है तथा काले रंग के प्याज के बीज के समान होता है जिसकी अंकुरण क्षमता लगभग 30 से 40 प्रतिशत होती है। बाजार में प्रमुखतः तीन प्रजातियाँ प्रचलित हैं जिसका प्रमुख औषधिय गुण है (1)क्लोरोफाइटम बोरीविलेनम (2)क्लोरोफाइटम अरुन्डीनेसियम (3) क्लोरोफाइटम ट्यूबोरोजम (4) क्लोरोफाइटम बोरीविलेनम इस प्रजाति का महत्व सबसे अधिक है। इसके कंद की मोटाई प्रायः एक समान बेलनाकार होती है। इसकी लम्बाई लगभग 10 से 12 सेमी.होती है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय घटक:- इसका मुख्य भाग कंद ही दवाइयों के उपयोग में आता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट- 42 प्रतिशत, प्रोटीन - 8 से 9 प्रतिशत, सैपोजीन्स/सैपोनिन्स 2 से 15 प्रतिशत, रेशा - 3 से 4 प्रतिशत, ग्लूको साइट्स, एस्टोराइड्स, विटामिन - A.B.D.K. तथा E. पाया जाता है। सैपोजीन्स की मात्रा के आधार पर इसका मूल्य निर्धारण होता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- संग्राहकों के बीच अत्यधिक मूसली निकालने की स्पर्धा है जिसके कारण अपरिपक्व कंदों का दोहन होता है। वनों में सफेद मूसली के बीज प्राकृति रूप से बिखर भी नहीं पाते हैं जिससे पुनरोत्पादन में काफी असर पड़ रहा है। अवैज्ञानिक तरीकों से दोहन हो रहा है। मौजूदा पीढ़ी कंद प्राप्त करने हेतु पूरे पौधे को उखाड़ फेंकती है। इसके क्राउन को जहां से खोद कर कंद प्राप्त किया है वहां पुनः गड़ाना चाहिए। ऐसा नहीं किया जाता है। इस कारण भविष्य में सफेद मूसली के पुनरोत्पादन में असर पड़ेगा।

4. विनाश विहीन विदोहन विधि:-

(i) विदोहन हेतु पौधों/पेड़ों का चयन करना- इसके कंद को तभी निकालना चाहिये जब पौध से बीजों का बिखराव होने लगे, इससे प्राकृतिक रूप से पुनरोत्पादन होगा।

(ii) विदोहन किए जाने वाले पौधों के भाग के गुण-पौधों के परिपक्व होने पर पत्तियां हरे रंग से पीली पड़ने लगती हैं। यह इस बात का सूचक है कि कंद परिपक्व हो गया है तथा बीज भी पुनरोत्पादन हेतु जमीन में बिखर चुके हैं। यही दोहन के लिए उचित समय होता है।

(iii) विदोहन के लिए अपनाई जाने वाली विधि- विदोहन के लिए उपयोगी उपकरण-

- कुल्हाड़ी : इसका उपयोग आसपास उग आए अनावश्यक झाड़, खरपतवार हटाने के लिए किया जाता है।
- फावड़ा : जिस मिट्टी से कंद ढंका हुआ है, उसे खोदने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।
- कुदाली : गड्ढे से मिट्टी बाहर निकालने के लिए और जड़ कटने के बाद उसे पुनः ढंकने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।
- जमीन खोदने का यंत्र (हस्तचलित) : मिट्टी में मौजूद कंदों के गुच्छों को अलग करने हेतु इसे उपयोग में लाते हैं।
- दस्ती केंची : पौधो की डिस्क के पास मौजूद कंदों की छंटाई के लिए इसका उपयोग होता है।

विदोहन हेतु विशेष कार्य (परिचालन)- पहले एक फिट व्यास से पौधे के आसपास सावधानीपूर्वक मिट्टी को निकालना चाहिए और जमीन से कंद निकाल लेना चाहिए। सफेद मूसली के कंद गुच्छों में होते हैं और डिस्क के साथ गुच्छों में कंद जुड़ा होता है। बड़े कंदों को सावधानीपूर्वक डिस्क से अलग कर लेना चाहिये तथा एक-दो छोटे कंदों को डिस्क में लगे रहने देना चाहिये। डिस्क को पुनः उसी जमीन में गाडकर मिट्टी को हल्के से दबा देना चाहिए।

(iv) विदोहन का समय एवं वर्ष

सफेद मूसली के कंदों का दोहन अक्टूबर माह में कर लेना चाहिये। दोहन तब किया जाना चाहिये जब बीज पूर्ण रूप से जमीन पर बिखर जाये और प्राकृतिक रूप से उसका पुनरोत्पादन हो सके।

(v) विदोहन की सीमा

केवल कंदों का ही दोहन करना चाहिए तथा डिस्क को मिट्टी में दबाकर प्राकृतिक रूप से पुनरोत्पादन के लिए छोड़ देना चाहिए।

(vi) विदोहन के पश्चात् प्रबंधन एवं भंडारण :-

- रोपण हेतु कंदों का भंडारण आवश्यक है। इसका क्राउन से लगे हुए कंदों को हवादार प्लास्टिक बैग में 20 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड तथा 50 से 65 प्रतिशत नमी में भंडारण करते हैं। प्लास्टिक बैग को रेत से ढंका जाता है।
- अन्य विधि द्वारा एक मीटर गहरे गड्ढा खोदकर इसमें रोपण वाले कंदों को भर दिया जाता है। कंदों को जो डिस्क लगी हो उसे तह बनाकर रखा जाता है तथा रेत से ढांक दिया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि गड्ढे में नमी 70 से 80 प्रतिशत होनी चाहिए।

(vii) परिवहन हेतु रखरखाव- कंदों की मोटाई को देखते हुए उसे श्रेणीबद्ध तरीके से अलग-अलग कर लें। पूर्ण रूप से सूखे हुए कंदों को कम तापमान में पॉलीथिन बैग में पैक करना चाहिए और बाजार में बिकने हेतु भेज देना चाहिये। भविष्य में वायुरोधक एल्मुनियम फाइल में पैकिंग की जायेगी जिससे दो-तीन माह संचय किया जा सकता हैं।

(viii) परिवहन की विधि और समय (रात्रि, सुबह)

सफेद मूसली के कंदों का परिवहन प्रातः काल करना चाहिये। इसे सूर्य के ताप से बचाना चाहिये नहीं तो रखी हुई सामग्री कम हो जायेगी।

(ix) अपव्यय/नुकसान को कम करने के तरीके

सफेद मूसली के कंदों को कोल्ड स्टोरेज में नहीं रखना चाहिये। ऐसा करने से कंदों में फफूंद लग जाता है तथा प्लांटिंग मटेरियल की अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। मूसली के कंदों को चट्टान में रगड़कर ऊपरी सतह नहीं निकालनी चाहिए। इस प्रक्रिया में ऊपरी सतह के साथ साथ कंदों का उपयोगी भाग भी अधिक मात्रा में ऊपरी सतह के साथ निकल जाता है तथा मूसली में पल्प की मात्रा कम प्राप्त होती है। साधारणतः मूसली के कंदों की ऊपरी सतह धारदार चाकू से भी निकाली जाती है।

5. पुनरोत्पादन की विधि: सफेद मूसली का पुनरोत्पादन बीज या कंदों के द्वारा होता है। बीजों की अंकुरण क्षमता अत्यधिक कम, लगभग 12 से 15 प्रतिशत तक होती है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना

- जब पौधे की पत्तियां हरी हों तब कंदों का विदोहन नहीं करना चाहिए। यह इस बात का सूचक है कि कंद अभी परिपक्व नहीं हो पाए हैं और बीजों का बिखराव पुनरोत्पादन हेतु जमीन पर नहीं हो पाया है। प्राकृतिक रूप से उगे हुए अंकुरित पौधों को गोद लेना तथा देखभाल करना चाहिए।
- निगरानी और मूल्यांकन- सुझाये गए उपायों के लिए हितधारकों की एक सफेद मूसली समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय समय पर करेगी।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें :-

- प्रसंस्करण हेतु कंदों को टोकनी में रखा जाता है तथा बहते हुए पानी में कंदों को अच्छी तरह से साफ कर लिया जाता है। कंदों में लगी मिट्टी को अच्छी तरह साफ कर निकाल लिया जाता है। धुलाई के 2-3 दिन बाद सूर्य की रोशनी में सुखाया जाता है। सुखाने हेतु सोलर ड्रायर या टनल ड्रायर का भी उपयोग किया जा सकता है। इसमें कुछ घंटों में ही सूखने की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है इस प्रक्रिया में कंदों का वजन 70 से 80 प्रतिशत कम हो जाता है।
- इसके पश्चात जड़ों का पाउडर बना कर उपयोग के लिये तैयार किया जाता है।
- इसे एक एल. डी. पी. ई. बैग में पैक कर कमरे के तापमान पर संग्रहित किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रसंस्करण से मूल्य में 30-50 प्रतिशत की वृद्धि मिल सकती है।

चित्र : जड़ का पाउडर

14. नागरमोथा (साइप्रस रोटंडस)

यह एक प्रकार का खरपतनुमा पौधा होता है जो की दुनिया के कई हिस्सों में पाया जाता है। यह पौधा सामान्यतः सभी प्रकार के वनों में पाये जाते हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में इसे परपल नटसेज, नटग्रास, जावाग्रास के नाम से भी जाना जाता है।

1. पौधे का आकार:- इस झाड़ीनुमा पौधे की ऊँचाई 30-60 सेमी.तक होती हैं यह एक चिरस्थायी चिकना गुल्म घास होता है। इसमें पत्तियां भूमिजन्य तने से निकलती हैं जो लम्बी एवं पतली होती हैं। नागरमोथा की जड़ में कसेरू की भांति एक कंद निकलता है जिसे नागरमोथा कहते है। इसमें अत्यधिक विकसित भूमिजन्य तना होता है जो स्पष्ट तीन भागों कन्द, प्रकन्द और जड़ में विभक्त रहता है। कन्द आरम्भ में सफेद और सरस होता है। परन्तु परिपक्वता पर काला और कठोर हो जाता है। यह विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में सभी प्रकार की मिट्टी में उगता है। भूमिजन्य तने से एक वायुवीय तना निकलता है जिसके अग्र भाग पर छोटे-छोटे पुष्प लगे होते हैं।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इस पौधे का काला कन्द मूल भूमिगत तना उपयोग में लिया जाता है। पिनीन, सिनीयाल, वसा तेल लिनोलिक अम्ल, आलिक अम्ल, मिरस्टीक अम्ल, स्टीयरीक अम्ल ग्लीसराल, गिलायकोसायड, सायपेरीन, सायपेरीनन, ल्युटीयोलिन इसके सक्रिय तत्व है। यह कई सारी बीमारियों जैसे पेट और आंत संबंधी समस्याऐं, दर्द से ईलाज तथा बालों के विकास के लिये उपयोग किया जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- सम्पूर्ण पौधे को जड़ सहित उखाड़ लिया जाता है और जमीन से ऊपर के तने को प्रकन्द से अलग करके फेंक देते हैं और प्रकन्द को धूप में थोड़ा सूखने के लिए रख देते हैं। इस प्रक्रिया में पौधे के प्रजनन के लिए आवश्यक कन्द

पूर्ण रूप से निकलने से नए पौधे के अंकुरण की सम्भावना क्षीण हो जाती है और परिणामस्वरूप इनके पौधों की संख्या धीरे-धीरे कम होने लगी है।

4. विनाशविहीन विदोहन का तरीका :-

(i) कन्द निकालने के लिए पौधे का चयन करना- कन्द निकालने के लिए केवल 30-40 सेमी. लम्बे पौधों का ही चयन करना चाहिए।

(ii) विदोहन के लिये पौधों के गुण- परिपक्वता पर पत्ती का रंग पीला हो जाता है। जिन कंदों को निकालना है उनकी मोटाई 5-7.5 सेमी. लम्बाई तथा एक अंगुल मोटी होना चाहिए।

(iii) कन्द निकालने का तरीका- कन्द निकालने के लिए विशेष प्रकार के हंसिये, टोकरी का इस्तेमाल करें। कन्द को काटने के लिए अच्छे धारदार हंसिये से काटें और कुछ भाग को छोड़ दें ताकि आगे आने वाले मानसून में उससे नए पौधे अंकुरित हों सके।

(iv) कन्द निकालने का सही समय और उम्र- कन्द के विदोहन का समय दिसम्बर और जनवरी माह में सुबह के समय करें तथा जब पौधा 1-15 वर्ष से अधिक का हो तभी कंद निकाले।

(v) कन्द निकालने की सीमा- पूर्णरूप से परिपक्व, सड़ी गली जड़ों को वहीं छोड़ देना चाहिए और 75 प्रतिशत कंदों का ही संग्रहण करना चाहिए शेष 25 प्रतिशत परिपक्व कंदों को अंकुरण और पुनरोत्पादन के लिए छोड़ देना चाहिए।

(vi) विदोहन के बाद प्राथमिक प्रसंस्करण की विधि- संग्रहित जड़ों को शुष्क स्थान पर रखें। जड़ों को स्वच्छ पानी से 4-5 बार धोयें जिससे रेत और मिट्टी को हटाया जा सके। स्वच्छ जड़ों को 2-3 दिन तक छांया में सुखाएं। इस प्रकार से स्वच्छ और सूखी हुई जड़ों को स्वच्छ जूट अथवा प्लास्टिक के बोरों में भरकर भण्डारण करें। भण्डारण के लिए ऐसे स्थान का चयन करें जो शुष्क, ठंडा हो तथा कुतरने वाले जानवर जैसे चूहा, गिलहरी इत्यादि और दीमक से मुक्त हो।

(vii) पैकेजिंग और परिवहन का समय- इसे जूट के बोरों में पैक किया जाना चाहिये एवं स्वच्छ वाहन में इसका परिवहन भी रात्रि के समय अथवा सुबह जल्दी ही करें ताकि इसको अत्यधिक गर्मी से बचाया जा सके इससे इसकी गुणवत्ता बरकरार रहेगी और खराब होने से बचाया जा सकता है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- बीजों से और प्रकन्द से इसका वर्धी प्रजनन होता है। केवल 60-70 प्रतिशत पौधों का विदोहन करना चाहिये एवं 30 प्रतिशत पौधे पुनरोत्पादन के लिये छोड़ देना चाहिये।

6. प्रजाति के प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना: -

(i) बीज धारित पौधों को चिन्हांकित करना चाहिए।

(ii) पुनरोत्पादन के लिए 75 प्रतिशत जड़ों कों नहीं निकालना चाहिए ।

(iii) प्राकृतिक स्थानों जहाँ नागरमोंथा उग रहा हो उसको स्थानीय लोगों द्वारा गोद लिया जाए और उसकी उचित देखभाल कर विनाशविहीन विदोहन सुनिश्चित किया जाए।

(iv) उचित मूल्यांकन और निगरानी हो।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:-

नागरमोथा की जडों को साफ पानी में धोकर मिट्टी इत्यादि निकाल देना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें सोलर टनल में सूखाकर बिक्री करने पर 25-30 प्रतिशत अधिक मूल्य प्राप्त हो सकता है। सोलर टनल में सुखाने से जड़े काली नहीं पड़ती और इससे मूल्य संवर्धन होता हैं अतः यह एक वांछित प्रक्रिया है जिससे संग्राहको अधिक मूल्य मिल सकता है। इसके आसवन की प्रक्रिया थोड़ी जटिल एवं खर्चीली है अतः स्व-सहायता समूहों के लिये इस तरह की व्यवस्था करना कठिन है। अतः जड़ को धोकर, सूखाकर, पैकेजिंग करके बेचना ही पर्याप्त है।

चित्र : जडें सूखाकर बिक्रय हेतु तैयार है

गोंद उत्पादन करने वाले पौधे

गर्म और शुष्क मौसम में गोंद अधिक निकलता है इसलिए गोंद निकालने का काम अक्टूबर से जून के बीच करना चाहिए। वृक्ष के तने को तीन क्षेत्रों में विभाजित करना चाहिए और प्रत्येक क्षेत्र से एक वर्ष में एक ही बार गोंद निकालना चाहिए। चीरा टेढ़ा-मेढ़ा लगाएं अर्थात एक ही रेखांश पर न होकर अलग अलग रेखांश पर लगायें। इस प्रकार तीन वर्ष में तीनों क्षेत्रों से गोंद निकालें और फिर कुछ समय के लिए पेड़ से गोंद न निकालें जब तक कि घाव पूरी तरह से भर न जाए अन्यथा वृक्ष नष्ट सकता है।

गोंद निकालने के लिए चीरा/छाल छीलने की सामान्य विधियां और उसमें उपयोग होने वाले औजार

1. लम्बा, पैना चीरा सर्वोत्तम होता है क्योंकि इससे शुध्द रेजिन/गोंद मिलता है। अनियमित रूप से लगाये गए चीरे से तमाम अशुद्धियाँ रेजिन/गोंद में मिल जाती हैं।
2. चीरा लगाने/छाल छीलने के लिए पैना चाकू या वसूला ही उपयोग में लाना चाहिए।
3. छाल पर गोंद सूखने देने के वजाय उसको एकत्रित करने के लिए नारियल के खोल या पोल बांस को छाल पर लगा कर उपयोग किया जा सकता है।
4. लम्बवत चीरा अच्छा होता है क्योंकि गोंद को बाहर निकलने के लिए अधिक क्षेत्र उपलब्ध कराता है और चीरा शीघ्रता से ठीक हो जाता है। आयताकार और गोल चीरा (घाव) भरने में अधिक समय लगता है क्योंकि दो दीवारों के बीच अधिक दूरी होती है।
5. यदि हम एक ही वृक्ष में एक से अधिक चीरा (घाव) लगा रहे हैं तो टेढ़े मेढ़े लगायें अर्थात एक ही रेखांश पर न हों इससे अधिकतम गोंद निकल आयेगा।

15. सलई (बोस्वेलिया सेरेटा)

बोस्वेलिया सेरेटा (सलई) जिसे लोबान के रूप में जाना जाता है। औषधि के रूप में सदियों से उपयोग में लाया जा रहा है। सलई गोंद आर्युवेद में एक महत्तवपूर्ण औषधि है। सलई का वृक्ष मुख्यतः मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और गुजरात एवं कुछ मात्रा में महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश और शुष्क क्षेत्रों में पाये जाते है। यह ढलान एवं पहाड़ीनुमा वाली जगहों पर होते हैं।

1. पौधे का आकार:- सलई एक मध्यम से बड़े आकार का पर्णपाती वृक्ष है जिसमें थोडी सी नीचे झुकी हुई शाखाओं का क्राउन होता है। सामान्यतः तना छोटा होता जिसकी लंबाई 3.6-4.5 मी, मोटाई 12-1.8 मी. और ऊँचाई 9-15 मी. होती है। छाल बहुत पतली, भूरी-हरी जिससे कागजी छिलका निकलता रहता है। चीरा चमकीला और गहरा गुलाबी होता है जिससे छोटी-छोटी गोंद की बूंदे निकलती है। पुष्प सफेद, शाखाओं के अग्रिम सिरे पर गुच्छों में होते है। दिसम्बर माह में पत्तियाँ पीले से हल्की भूरी हो जाती हैं और झड़ना प्रारम्भ हो जाती हैं। इस मौसम में पत्तियों के हल्के भूरे रंग से वृक्ष को दूर से ही पहचाना जा सकता है। जनवरी के अंत से अप्रैल के अंत तक वृक्ष पूरी तरह से पत्ती विहीन हो जाता है। और मई जून में नई कोंपलें आना शुरू हो जाती हैं। जनवरी के अंत में शाखाओं के छोरों पर पुष्प आने प्रारंभ हो जाते हैं जो मार्च-अप्रैल तक पूरी तरह आ जाते हैं इस समय तक वृक्ष पूर्ण रूप से पत्ती विहीन होता है। कभी-कभी पुष्प, पुरानी पत्तियों के झड़ने से पहले या नई पत्तियों के निकलने के बाद भी निकलते हैं। मई जून में फल पकते हैं।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- सलई के पौधों की छाल और तना से प्राप्त गोंद (लेटेक्स) का उपयोग जोड़ो के दर्द में किया जाता है एवं गोंद को नारियल के तेल के साथ मिलाकर घावों पर लगाया जाता है और यह बालों के विकास में भी सहायक होता है। इसकी छाल का उपयोग दस्त, बवासीर, और त्वचा रोगों में किया जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- तने पर चीरा (घाव) हंसिया जैसे अर्ध-गोलाकार धारदार लोहे की ब्लेड जिसे 'बीपसबील' कहते हैं, इसकी सहायता से ऊपरी छाल छीलकर जमीन से 0.75 मीटर ऊपर लगाया जाता है। चीरा तने के चारों ओर गोलाई में तकरीबन 10 सेंमी. चौड़ाई और 0-25 सेंमी. गहरा लगाया जाता है। जैसे-जैसे संग्रहण समय बढ़ता जाता है चीरा की ऊँचाई ऊपर की ओर बढ़ाते जाते हैं और अंत में चीरे की ऊँचाई 80 से 85 सेंमी. हो जाती है। गोंद निकालने के लिए नया चीरा पहले चीरे के उपरी सिरे से 2.5 से 3 सेमी. छोड़कर लगाया जाता है। सीजन के प्रारंभ होने के 50-60 दिन बाद नई जगह पर छाल छीलकर गोंद निकाला जाता है। जैसे जैसे सीजन आगे बढ़ता है वैस वैसे गोंद निकालने के तीव्रता बढती जाती है और गोंद को हर सप्ताह निकालते हैं जो ओलिओरेजिन डक्ट से स्त्रावित होता है।

तने से स्त्रावित होने वाले गोंद को एक छोटे घंटाकार घातु के पात्र जिसे धाती कहते हैं, के मदद से खुरच कर निकालते हैं। मध्य जून से लेकर अक्टूबर तक गोंद निकालने का कार्य नहीं किया जाता है ताकि निकाली गई छाल का घाव भर जाए और सलई के पेड़ का पुनरोत्पादन सुनिश्चित हो।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधि:-

(i) गोंद निकालने के लिए वृक्ष का चयन: करना गोंद निकालने के लिए 35-60 वर्ष की उम्र के वृक्ष का ही चयन करें क्योंकि इस उम्र में ही रेजिन स्रावित करने वाली ग्रंथियां अत्यधिक क्रियाशील होकर अधिकतम गोंद का स्राव करती हैं। इस उम से कम या अधिक उम्र के पौधों से कम गोंद निकलता है।

(ii) पौधे की मोटाई: गोंद उसी पौधे से निकाले जिसके तने की मोटाई 60 सेमी. से अधिक हों।

(iii) गोंद निकालने का तरीका: सर्वप्रथम सन 1951 में श्री ओ. पी. भार्गव ने अपनी कार्य योजना में सलई गोंद निकालने की तकनीक की अनुसंशा की जो निम्न प्रकार है :

- गोंद निकालने के उपयोग किये जाने वाले औजार: विशेष प्रकार का हंसिया, टोकरी, धाती आदि।
- केवल 60 सेमी. से अधिक मोटाई के तने वाले वृक्षों से ही गोंद निकालना चाहिए और जहां से प्रथम शाखा निकलती है उसके बीच में 60सेमी. जमीन से ऊंचाई पर ही चीरा (छाल-छीलना) लगाना चाहिए।
- घाव की चौड़ाई 10.16 सेमी. और गहराई 0.6 सेमी. से अधिक नहीं होनी चाहिए और दो सप्ताह बाद ही ताजा घाव बनाया जाना चाहिए।
- एक सप्ताह में दो बार से अधिक घाव नहीं बनायें और प्रथम घाव को किसी भी हालत में एक बार में 2.50 सेमी. से अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए ।
- अति परिपक्व सलई वृक्षों, जिनके तने की मोटाई 90 सेमी. से अधिक हो, से गोंद नहीं निकालना चाहिए अन्यथा यह वृक्ष अपने स्वाभाविक समय से पहले ही नष्ट हो सकता है।
- गोंद निकालने के लिए वर्ष में 60 दिन की ही अनुसंशा की जाती है जो जुलाई से प्रारंभ होकर सितम्बर के अंत या अक्टूबर के प्रारंभ तक होता है, नवम्बर में पुनः गोंद निकलना प्रारंभ होता है। सर्वाधिक उपज जुलाई, दिसम्बर और फरवरी में प्राप्त होती है। जबकि अगस्त, नवंबर और अप्रैल माह में सामान्य और शेष महीनों में कम उपज मिलती है।

गोंद निकालने की एक और विधि वन शोध संस्थान, देहरादून के लघुवनोपज शाखा द्वारा अनुसंशित है जो निम्न प्रकार है :-

- वृक्ष की छाल जो लगभग 1 सेमी. मोटी होती है, जिसमें अधिकतम रेजिन केनॉल होती है, काष्ठ से जुड़ी रहती है। इसलिए घाव या चीरा इससे कम गहरा (लगभग 0-6 सेमी.) ही लगाया जाना चाहिए।
- गोंद केवल उन्हीं वृक्षों से निकालना चाहिए जिनके तने की मोटाई मनुष्य के सीने की ऊंचाई के बराबर ऊँचाई पर 90 सेमी. से अधिक हो ।
- गोंद निकालने का समय अक्टूबर-नवम्बर से प्रारम्भ होकर मई के अंत तक होना चाहिए, क्योंकि वर्षा में निकलने वाला गोंद गहरे रंग का होता है जो खराब गुणवत्ता वाला होता है। इसलिए गोंद निकालने की प्रक्रिया को मानसून से पहले रोक देना चाहिए।

- औजार की सहायता से जमीन से तकरीबन 15 सेमी. ऊंचाई पर छाल छीलकर घाव बनाये। प्रथम घाव वृक्ष के तने पर 90 सेमी. तक ही लगाये और उसके बाद प्रत्येक 50 सेमी. पर घाव बनाया जा सकता है। घाव का आकार 30 सेमी. लम्बा, 20 सेमी. चौड़ा और 6 सेमी. गहराई तक ही सीमित होना चाहिए।
- घाव बनाने के तुरंत बाद ही गोंद का स्राव शुरू हो जाता है। प्रथम संग्रहण एक महीने बाद करें जब नया घाव भी बनाते हैं। उसके बाद 15-15 दिन में नए घाव बनाये जा सकते हैं। हर 15 दिन में घाव को 1-6 सेमी. ऊपर की ओर बढ़ाते जाते हैं। सीजन के दौरान ताजे घाव बनाते समय 20 सेमी. तक छाल छीला जाना चाहिए। साल के अंत तक ताजे घावों के बीच 28.8-62.5 सेमी. अन्तराल होना चाहिए।
- लगातार गोंद निकालने के लिए तने को 3 क्षेत्रों में विभाजित करें, प्रत्येक भाग से एक वर्ष तक गोंद निकालें, इस प्रकार तीन क्षेत्रों से तीन वर्ष में गोंद निकाल लिया जाता है। विगत वर्षों में घाव की अन्य क्षैतिज पंक्ति बनाने के लिए पूर्व में बनाये गए घावों से 5 सेमी. दूरी छोड़कर बनायें। नए व पुराने घाव टेढ़े-मेढ़े/अनियमित सामान उर्ध्वाधर पंक्ति में नहीं होना चाहिए।

- भार्गव, 1951 ने गोंद निकालने के लिए तने की मोटाई 61 सेमी. जबकि वन शोध संस्थान देहरादून ने 90 सेमी. से अधिक की अनुसंशा की है। भार्गव ने इस प्रजाति के उन पौधों के तने की मोटाई की अनुसंशा की है जो शुष्क पर्णपाती वनों में अत्यधिक संख्या में वितरित थे। ऐसा समझा गया कि सलई के पेड़ वनों में बहुतायत में पाए जाते हैं इसलिए सन 1960 में नेपानगर में न्यूज पेपर मिल लगाने की योजना बनाई गई। इसके एक दसक से कम समय में ही इनकी संख्या तेजी से घटी और पुनरोत्पादन घटा परिणाम स्वरूप राज्य वन विभाग को सलई के पौधों का रोपण का निर्णय लेना पड़ा। नेपा नगर मिल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अलग से पौधारोपण विभाग बनाया गया और एक विशेष कार्य योजना तैयार की गई। इस प्रकार प्राकृतिक एवं पौधारोपण द्वारा सलई के वृक्षों के पुनरोत्पादन के सम्पूर्ण प्रयास विफल हुए। आज नेपानगर पेपर मिल कच्चा माल आसाम से आयत करता है और साथ ही साथ वैकल्पिक कच्चे माल का उपयोग भी करता है। इस प्रकरण से साबित होता है कि इस प्रजाति के उपयोग सम्बन्धी जानकारी कितनी सही है। इसलिए सलाह दी जाती है कि इस प्रजाति का उपयोग सावधानी पूर्वक करें। संसाधन की बहुलता ने वन विभाग के लोगों को गैर जिम्मेदार तरीके से गोंद निकालने के लिए उत्साहित किया परिणामस्वरूप अत्यधिक संख्या में वृक्ष नष्ट हो गए है। सलई के पेड़ों को बहुत बड़े पैमाने पर संतरों की पैकिंग के लिए पैकेजिंग सामग्री की आपूर्ति के रूप में किया गया परिणाम स्वरूप प्राकृतिक वनों से इस प्रजाति के वृक्षों की संख्या तेज गति से घटने लगी।

- मध्य प्रदेश के चम्बल क्षेत्र (श्योपुर वन मंडल) में बुद्धिमान लोग हैं जहाँ समुदाय के पास अनौपचारिक रूप से वितरित सलई के वृक्ष हैं और जिनसे वैज्ञानिक विधि से गोंद निकालते हैं। इनको वे सलई के खेत कहते हैं और ये इनको इनके पूर्वजों से विरासत में मिले हैं जिन्हें वह अपनी बेटी की शादी में दहेज में देते हैं। इस प्रकार का अनौपचारिक अधिकार द्वारा वृक्षों को स्वस्थ्य एवं उनकी उत्पादकता को सतत रूप से बनाये रखा जाता है। इस प्रकार के तरीकों को श्योपुर वन मंडल की कार्ययोजना में मान्यता प्रदान की गई।

(iv) गोंद निकालने के लिए उचित समय: गोंद स्राव के लिए अनुकूल तापमान के कारण सलई गोंद की उत्पादकता अक्टूबर से फरवरी के मध्य अधिकतम होती है। इस समय डक्ट रेजिन का स्राव लगातार करती हैं और तापमान कम होने की वजह से गोंद शीघ्रता से सूखता नहीं है जिससे डक्ट का रास्ता बंद नहीं होता है और गोंद का स्राव लगातार होता रहता है परन्तु गर्मी (मई-जून) में गोंद के शीघ्रता से सूखने की वजह से डक्ट का रास्ता बंद होने से स्राव कम होता है ।

(v) परिवहन के लिए पैकेजिंग: (गनी बैग, कनस्तर, कार्टून) नमी से बचाने के लिए गोंद को पॉली बैग में पैक करके रखे।

(vi) परिवहन का तरीका व समय: अन्य गोंदो की तरह इसका परिवहन भी रात्रि के समय ही करें ताकि इसको अत्यधिक गर्मी से बचाया जा सके इससे इसकी गुणवत्ता बरकरार रहेगी और खराब होने से बचाया जा सकता है।

(vii) विदोहन पश्चात प्रबंधन: गोंद को छाया में सुखाया जाता हैं और इस क्षेत्र में बहुतायत में पाई जाने वाली प्रजाति हरसिंगार (निकटेंथस आर्बोरिस्त्रिस) की शाखाओं से बनी टोकरियों में गोंद की पैकिंग की जाती है। लेंटाना एक अन्य खरपतवार है जिसका उपयोग गोंद के भण्डारण में किया जाता है। पैकिंग एवं भण्डारण की यह एक पर्यामित्र विधि हैं जिसमें पर्यावरण को कोई भी नुकसान नहीं होता है। यदि इन दोनों प्रजातियों में से कोई भी उस क्षेत्र में नहीं पाई जाती है तो बांस की टोकरियों में गोंद को पैक करके भण्डारण एवं परिवहन करते हैं।

(viii) अपव्यय और अपशिष्ट कम करने का तरीका: ओलियोरेजिन नलिकाएं सलई वृक्ष की छाल के ठीक नीचे होती हैं इसलिए गोंद निकालने के लिए तने को बिना नुकसान पहुँचाये छाल को ठीक तरीके से छीलें। यदि स्त्रवण ग्रंथियों को कुछ भी नुकसान पहुंचा तो घाव भरने में अधिक समय लगेगा जिससे गोंद कम मात्रा में प्राप्त होगा।

5. पुनरोत्पादन की विधिः- सलई के पौधे का पुनरोत्पादन बीज एवं तने की कटिंग द्वारा किया जाता है। इसके अंकुरण की क्षमता 25-30 प्रतिशत होती है एवं लगभग दो माह का पौधा जिसकी ऊंचाई 15-20 सेमी.हो रोपने के लिए प्रयुक्त होता है एवं वृक्षारोपण 26 प्रतिशत होता है। इसके तने की कटिंग जिसकी मोटाई 1-2 सेमी.हो वृक्षारोपण के लिए प्रयुक्त होता है।

6. प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करनाः-

- बहुत छोटे पौधे (तने की मोटाई 80 सेमी.से कम) का विदोहन नहीं करना चाहिए।
- प्राकृतिक रूप से अंकुरित पौधों की देखभाल संग्राहक समुदाय को करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक नए पौधे वृक्ष के रूप में विकसित हो सकें।
- विनाशविहीन विदोहन के बताये गए तरीके का पालन सुनिश्चित करने के लिए हित धारकों की एक समिति का निर्माण किया जावे जो इन नियमों की निगरानी और मूल्यांकन करें।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- प्रसंस्करण के लिये सभी प्रकार के गोंद में सफाई और ग्रेडिंग दो महत्वपूर्ण कार्य है। प्रायः गोंद में संग्रहण के समय पेड़ के छिल्के तथा अन्य बाहय पदार्थ मिले रहते है जिससे व्यापारी उसकी कम कीमत आंकते हैं। चित्र में दर्शाये अनुसार यदि बाहय पदार्थ निकाल दिये जाये तथा गोंद को सोलर टनल या छांये में सुखाया जाए तो उसका रंग और गुणवत्ता बनी रह सकती है और उससे उचित मूल्य मिल सकता है। यह कार्य महिला स्व-सहायता समूह अच्छी तरह से करके 40 प्रतिशत अधिक मूल्य अर्जित कर सकती है।

चित्र : सलई का गोंद

16. कुल्लु (स्टरक्यूलिया यूरेन्स)

कुल्लू (स्टरक्यूलिया यूरेन्स) मध्यप्रदेश के शुष्क-पर्णपाती वन क्षेत्रों में पाए जाने वाला एक मध्यम आकार का वृक्ष है। यह वृक्ष वनों में गर्मी के मौसम में इसकी सफेद रंग और चिकनी छाल के कारण बहुत स्पष्ट दिखता है। यह बलुई पत्थर वाली चट्टानों में उगते हैं लौह युक्त एवं चट्टानी मिटटी इसके लिये उपयुक्त होती है।

1. पौधे का आकार:- कुल्लु वृक्ष की उंचाई 30-40 फीट व गोलाई 100 सेमी. तक होती है। वृक्ष की छाल कत्थई भूरे रंग की व बारीक होती है, जिसे वृक्ष प्रत्येक वर्ष उतार देता है। वृक्ष की चिकनी छाल के झड़ने पर सिल्वर, व्हाईट व छाल युक्त हिस्से कत्थई भूरे रंग के दिखते हैं। कुल्लू वृक्षों में फरवरी-मार्च मे फूल आते हैं व मई माह मे इसके बीज पकते हैं। इसके बीज काले रंग के होते हैं। कुल्लू के पत्ते उसकी टहनियों के अंत में, एक झुरमुट में लगते हैं। यह प्रजाति सूखारोधी होती है। पुष्प दिसंबर से मार्च माह में गुच्छों में तथा पुष्प विन्यास संयुक्त मंजरी प्रकार का होता है। फल अप्रैल मई में पककर बीज बिखेर देते है। फल बाहर से कठोर, तिखे रुयें द्वारा ढ़ँका रहता है, जब ये पकते है तो इनका रंग पीले से चमकीला लाल हो जाता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- कुल्लु के वृक्ष का उपयोगी भाग गोंद होता है एवं इसे औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:-

- सितम्बर जून माह में शाखाओं और तने में अलग अलग जगहों पर चीरा लगाते हैं। चीरा इतना गहरा लगाते हैं कि उन उत्तकों को

क्षति पहुँचती है जिनसे खाद्य पदार्थों और पानी का परिवहन पेड़ में होता है और वह भाग संक्रमित एवं कमजोर होकर अंत में पेड़ नष्ट हो जाता है

- एक ही पेड़ में 2-4 वर्षों तक लगातार गोंद निकालने से पेड़ का तना कमजोर हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप पेड़ तेज हवा में गिर जाता है ।
- अवैज्ञानिक विदोहन की वजह से गोंद की गुणवत्ता में कमी आती है जिससे व्यापारी संग्राहक से बहुत कम कीमत पर खरीदते हैं।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधिः-

(i) विदोहन के लिए वृक्ष का चयन करना : 8 वर्ष से अधिक उम्र का वृक्ष जिसके तने की मोटाई 90 सेमी.(जमीन से करीब 4-5 फीट ऊंचाई पर) हो उसे वृक्ष से गोंद निकालना चाहिए।

(ii) विदोहित होने वाले भाग के गुणः स्वस्थ्य वृक्षों का ही चयन गोंद निकलने के लिए करें चयनित वृक्ष का व्यास 90 सेमी.से कम नहीं होना चाहिए।

(iii) कुल्लू गोंद संग्रहण की वैज्ञानिक विधिः-

वैज्ञानिक विधि से कुल्लू गोंद संग्रहण हेतु जो सामग्री उपयोग में लाई जाती है, वह इस प्रकार हैःहंसिया (तेजधार युक्त), बाँस की टोकरी, प्लास्टिक शीट (15X15 सेमी.), चिमटी, मचान(1X1 मी.लंबी व 90 सेमी.ऊंची), मोटी प्लास्टिक शीट (1X1 मी.)
इसके अतिरिक्त न्यूनतम 90-100 से.मी. गोलाई का कुल्लू वृक्ष ही कड़ी गोंद निकालने हेतु उपयुक्त माना जाता है। मोटे तौर पर संग्राहक की कमर की ऊँचाई पर दोनो हाथों मे जो वृक्ष आ जाता है, वह गोंद निकालने हेतु उपयुक्त है।

कुल्लू गोंद संग्रहण की चरणावार विधि इस प्रकार हैः-

1. चयनित कुल्लू वृक्ष के जड़ क्षेत्र में 1 मीटर गोलार्द्ध का कूड़ा-कचरा साफ करें, ताकि संग्रहक वहां खड़ा होकर वृक्ष पर खांचा/चीरा लगा सके। तत्पश्चात् वृक्ष के तने को, संग्राहक के सामने वाले हिस्से पर कपड़े या पत्ते से झाड़ कर साफ करें। ध्यान दें कि सफाई करते समय वृक्ष पर कोई रंग अथवा खाँचा न पड़े।
2. जमीन से 90 सेमी.उँचाई अथवा संग्राहक की कमर के सामने वृक्ष के तने पर एक क्षैतिज/लेटा हुआ चीरा लगाऐं।
3. इस क्षैतिज चीरे के हर सिरे पर 15-20 सेमी.लंबा व 2-4 सेमी. गहरा एक-एक ऊर्ध्वाधर/सीधा कट लगाएं।
4. इन दोनो ऊर्ध्वाधर चीरों के ऊपरी सिरों को एक अर्द्ध चंद्राकार ब्लेज बनाकर जोड़ें व इस ब्लेज के अंदर की छाल को गुद्दे लगाकर ढीला कर दें ।
5. सोलहवें दिन पुनः उस वृक्ष के पास आकर देखें। ब्लेज के अंदर (जहां गुद्दे लगाए गए थे) वह जगह पूर्ण रूप से सूख चुकी होनी चाहिये व छाल स्वयं ही उखड़ आनी चाहिये ताकि ब्लेज साफ सुथरा दिखने लगे। इस ब्लेज के अर्द्ध चंद्राकार चीरे को जरा सा गहरा करें ताकि इससे कुल्लू गोंद निकलनी शुरू हो। यह गोंद विभिन्नाकार की बूंदों के रूप में ब्लेज से रिसती है व स्पष्ट दिखती है।

6. अब ब्लेज की सम्पूर्ण सतह पर चार बबूल के कांटों या अन्य कांटों की सहायता से 15X15 सेमी. की प्लास्टिक की पन्नी गाड़ दें, ताकि अर्द्ध चंद्राकार भाग से जो गोंद निकलकर एकत्रित हो, वह सीधे पन्नी पर ही गिरे और वह छाल रहित एवं पारदर्शी हो। हर दो दिन पश्चात् पुनः वृक्ष के पास जाकर हँसिये और चिमटी की सहायता से पारदर्शी गोंद को निकालकर टोकरी में एकत्रित करें। यदि अर्द्धचंद्राकार चीरे से गोंद न निकल रहा हो तो फिर उस चीरे को थोड़ा गहरा कर दें। इस गोंद को घर मे खुले में बनी मचान पर मोटे प्लास्टिक की 1X1 मीटर की पन्नी पर सुखाने के लिए डालें।
7. गोंद निकालने के पश्चात् वृक्ष के अर्द्धचंद्राकार ब्लेज की 05 सेमी. छाल हंसिये की सहायता से छील दें, ताकि 2 दिन बाद पुनः वृक्ष से उपरोक्त तरीके से गोंद निकाल कर सुखाई जा सके।
8. कुल्लू वृक्ष पर जो ब्लेज बनाया गया है उससे शुरू होकर ऊपर वृक्ष के तने पर जहां तक संग्राहक का हाथ पहुँचता है, लगातार 3 वर्ष तक गोंद निकाली जा सकती है। इसके पश्चात् प्रथम ब्लेज के ठीक पीछे की ओर तने पर इसी प्रकार का ब्लेज बनाकर अगले

3 वर्ष तक गोंद का संग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार 6 वर्ष पूर्ण होने के पश्चात् दायीं ओर बगल में बनाए गये, तीसरे ब्लेज से अगले 3 वर्ष तक गोंद का विदोहन किया जा सकता है। 12 वर्ष तक इस प्रकार इन नए ब्लेजों से गोंद निकालने के पश्चात्, तेरहवें वर्ष में पुनः प्रथम ब्लेज का उपयोग किया जा सकेगा। यह इस कारण कि 9 वर्ष में तने पर बना ब्लेज रूपी घाव, कैलस बनने की प्राकृतिक क्रिया द्वारा पूरा भर जाता है और तना पुनः नया एवं साफ सुथरा मिल जाता है। एक स्वस्थ कुल्लू वृक्ष से एक मौसम में 1 किलो तक कुल्लू गोंद निकाली जा सकती है।

ऊपर बताई वैज्ञानिक विधि से कुल्लू गोंद का संग्रहण करने से कुल्लू वृक्ष वर्षों तक जीवित रह सकते हैं व इनसे निकली उत्तम गुणवत्ता की गोंद संग्राहकों की कई पीढ़ियों को अच्छी व सतत् आमदनी प्रदान कर सकती हैं।

(iv) विदोहन का समय, मौसम महीना: इसका गोंद गर्मी के मौसम में ही निकालें और इसके लिए उपयुक्त महीना अक्टूबर से जून तक है इस समय अधिक गोंद का स्राव होता है।
(v) विदोहन की सीमा: एक समय में एक वृक्ष में केवल एक ही चीरा लगाएं ।
(vi) परिवहन के लिए पैकेजिंग: इसकी पैकिंग हर सिंगार या लेंटाना की शाखाओं से बनी डलियों में की जाती है। इससे पर्यावरण को भी कोई नुकसान नहीं होता है और यह पर्यावरण सम्मत तरीका है। जहां पर ये दोनों ही प्रजातियाँ नहीं पाई जाती हैं वहां पर बांस की टोकरी का उपयोग किया जाता है। फिर इन डलियों को ट्रक द्वारा परिवहन किया जाता है।
(vii) परिवहन की विधि एवं समय: इसका परिवहन भी रात्रि के समय ही करें ताकि इसको अत्यधिक गर्मी में धूप से बचाया जा सके इससे इसकी गुणवत्ता बरकरार रहेगी और अपशिष्ट से बचा जा सकता हैं।
(viii) विदोहन पश्चात प्रबंधन: गोंद को परिवहन करने से पहले भण्डारण करने के लिए धूप में सुखाया जाता है। सुखाने के लिए एक बांस का मचान मनुष्य की कमर जितने ऊंचाई पर बनाते हैं जिस पर एक पलिथीन की बड़ी शीट बिछाते हैं तथा इस शीट पर गोंद से भरी पलिथीन बैग्स को उल्टा करके खाली कर लेते हैं और गोंद को फैला देते हैं ताकि जल्दी सूख जाये। सुखाये गए गोंद का भण्डारण 15-25 डिग्री सेल्सियस व 8-10 नमी पर करें।
(ix) नुकसान अपशिष्ट को कम करने का तरीका: तने की केंबियम को बचाने के लिए इंच से कम गहरा चीरा लगाएं ताकि फफूंद का संक्रमण न हो और पूरा पेड़ नष्ट न हो। संक्रमित वृक्ष से गोंद नहीं निकालना चाहिए।

6. प्राकृतिक पुनर्जनन को सुनिश्चित करना:-

(i) बीज वाले पौधों को चिंहित करें।
(ii) नए पेड़ों जिनकी तने की मोटाई 80 सेमी.से कम हो, से गोंद नहीं निकालना चाहिए।
(iii) प्राकृतिक रूप से अंकुरित पौधों की देखभाल संग्राहकों द्वारा की जानी चाहिए ताकि वे पूर्ण रूप से एक नए वृक्ष के रूप में विकसित हो अर्थात इस तरह के पौधों को गोद ले सकते हैं।
(iv) निगरानी एवं मूल्यांकनः ऊपर बताये गए नियमों का पूर्ण रूप से पालन सुनिश्चित कराने के लिए एक स्थानीय समिति हो जिसमें हितधारक शामिल हों और इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन करें।

7. प्रसंस्करण की संभावनाये:- प्रंसस्करण के लिये सभी प्रकार के गोंद में सफाई और ग्रेडिंग दो महत्वपूर्ण कार्य है। प्रायः गोंद में संग्रहण के समय पेड़ के छिल्के तथा अन्य बाहय पदार्थ मिले रहते है जिससे व्यापारी उसकी कम कीमत आंकते हैं। चित्र में दर्शाये अनुसार यदि बाहय पदार्थ निकाल दिये जाये तथा गोंद को सोलर टनल या छांये में सुखाया जाए तो उसका रंग और गुणवत्ता बनी रह सकती है और उससे उचित मूल्य मिल सकता है। यह कार्य महिला स्वा-सहायता समूह अच्छी तरह से करके 40 प्रतिशत अधिक मूल्य अर्जित कर सकती है।

चित्र : ग्रेडिंग के पश्चात् प्रथम श्रेणी गोंद

17. धावड़ा (एनोजिसस लैटिफोलया)

एनोजिसस लैटिफ़ोलिया, भारत, नेपाल, म्यांमार और श्रीलंका के मूल निवासी छोटे से मध्यम आकार के पेड़ की एक प्रजाति है। यह भारत के सबसे उपयोगी पेड़ों में से एक है। पेड़ पूरे देश में बड़े पैमाने पर बढ़ता है, आमतौर पर पश्चिमी घाट क्षेत्र में विशेषकर शुष्क पर्णपाती वनों और विन्धांचल, सतपुड़ा और पश्चिमी घाट पर्वत श्रृंखला के शुष्क पठारों में, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और उड़ीसा में फैले हुए है। इसके अन्य औधोगिक उपयोग भी है। शुष्क एवं पर्णपाती वन क्षेत्रों में धावड़ा के पेड़ बहुतायत से पाये जाते है। मध्यप्रदेश में यह साल एवं सागौन दोनों प्रमुख प्रजातियों के साथ सहयोगी वृक्ष के रूप में पाये जाते है। इनका उपयोग जलाऊ लकडी, ईमारती पोल एवं गोंद निकालने के लिये किया जाता है। कटाई पर धीरे-धीरे अंकुश लगाया जा रहा है क्योंकि वन क्षेत्र जलावायु परिवर्तन के कारण सुख रहे है, जिसमें विभिन्न कारणों से वन क्षेत्रों का ह्रास हो रहा है और पुनरोत्पादन प्रभावित हो रहा है। अभी तक जो अनुभव रहा है उससे स्पष्ट है कि गलत तरीके से गोंद निकालने के कारण वृक्ष के तने रोग ग्रसित हो रहे है।

1.पौधे का आकार:- पेड़ भारतीय गोंद का स्रोत है, जिसे घट्टी गम भी कहा जाता है, जिसका उपयोग अन्य उपयोगों के बीच केलिको प्रिंटिंग के लिए किया जाता है। पत्तियों को एंथेरिया पफिया मोथ द्वारा भी खिलाया जाता है जो टसर रेशम (तुसाह) का उत्पादन करता है, जो व्यावसायिक महत्व के जंगली रेशम का एक रूप है। यह एक बड़ा सीधा पर्णपाती पेड़ है जो एक चिकनी हल्के रंग की छाल के साथ 25 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ सकता है। कभी-कभी छाल के छूटने के कारण छाल में सफेद भूरे रंग के अवसाद होते हैं। इसकी पत्तियों में बड़ी मात्रा में गैलोटेनिन होते हैं, और भारत में इमारती काष्ट और जलाऊ लकड़ी के लिए उपयोग किया जाता है परंतु इसका सबसे अच्छा उपयोग इससे प्राप्त होने वाले गोंद का है। इसका गोंद प्रसव के बाद महिलाओं को लड्डू बनाकर खिलाया जाता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- गोंद स्रोत के रूप में इसके उपयोग के अलावा, पेड़ का व्यापक रूप से लकड़ी के लिए भी उपयोग किया जाता है और इसकी पत्तियों से टैनिन निकाला जाता है। एक पेड़ एक साल में औसतन 1-2 किलो गोंद पैदा करता है। गोंद की उपज, दोहन की विधि पर निर्भर करती है। प्रोटीन, वसा और विटामिन से भरपूर होता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- धावड़ा में गम टैपिंग के पारंपरिक तरीके न केवल अनुत्पादक हैं, बल्कि विनाशकारी होते हैं। आम तौर पर आदिवासी लोगों द्वारा मुख्य तने को कुल्हाड़ी से काटकर और बिना कटे पेड़ों से गोंद एकत्र किया जाता है। जमी हुई गोंद को चुना जाता है। भारी दोहन कैम्बियम को क्षतिग्रस्त कर देता है और पेड़ के जीवन काल को कम कर देता है क्योंकि घाव भरना मुश्किल हो जाता है।

4. विनाशविहीन विदोहन की विधियाँ:- गोंद घटी की कटाई और ग्रेडिंग उसी तरीके से की जाती है जैसे गोंद क्रिया के लिए किया जाता है। स्थानीय लोगों एवं ज्यादातर आदिवासियों द्वारा रिसाव को हाथ से उठाया जाता है, और कई दिनों तक धूप में सूखने के लिए रखा जाते हैं। प्रसंस्करण केंद्रों पर, छाल के साथ गोंद और बिना छाल के गोंद को छांटा जाता है। छाल को हाथ से उठाया जाता है और गोंद से हटा दिया जाता है। छाल वाले मसूड़ों को प्रसंस्करण मशीन में भी डाला जाता है जहां छाल को गोंद से अलग किया जाता है। बारीक अशुद्ध कणों की जांच की जाती है और इन्हें हटा दिया जाता है। फिर गोंद को रंग और अशुद्धता की मात्रा के अनुसार विभिन्न ग्रेडों में हाथ से छांटा जाता है।

(अ) संग्रहण की अवधि- गोंद की अधिकतम मात्रा गर्मियों के महीनों में यानी मार्च से जून के मय तक एकत्र की जाती है। इस समय के दौरान जैसे-जैसे मौसम गर्म होता है, उपज में वृद्धि होती है। आम तौर पर सबसे बड़ी फसल अप्रैल में एकत्र की जाती है।

(ब) दोहन की विधि- आमतौर पर गोंद के लिए पेड़ों का दोहन नहीं किया जाता है। ज्यादातर गर्मियों में चोटों और घावों के माध्यम से छाल से गोंद स्वाभाविक रूप से बाहर निकलता है और इसे मैन्युअल रूप से एकत्र किया जाता है। कुछ जगहों पर गोंद की पैदावार बढ़ाने के लिए पेड़ की छाल में त्रिम चीरे लगाए जाते हैं। इन चीरों को सावधानी से बनाया जाता है ताकि पेड़ को स्थायी रूप से घायल या नष्ट न किया जा सके। एक पेड़ एक साल में औसतन 1-2 किलो गोंद पैदा करता है। गोंद की उपज इलाके, आकार और टी के विकास की शक्ति और दोहन की विधि पर निर्भर करती है।

(स) गुणवत्ता- गोंद का रंग सफेद से पीले तक भिन्न होता है; यद्यपि अशुद्धियों की उपस्थिति कभी-कभी गोंद को भूरा रंग प्रदान करती है। गोंद घट्टी पानी में आंशिक रूप से घुलनशील है और एक रंगहीन कफ बनाती है। गोंदघट्टी एक मध्यम चिपचिपा गोंद है इसे अरबी गोंद से बेहतर माना जाता है गोंद घिट्टी के घोल क्षार के प्रति संवेदनशील होते हैं। 8.0 और उससे अधिक के पीएच पर अधिकतम पीएच के साथ चिपचिपापन तेजी से बढ़ता है जब समाधान ऊपर हो जाते हैं तब वो कठोर हो जाते हैं। गोंद घिट्टी खाद्य उपयोग के लिए मान्य है और खाद्य, औषधि और कॉस्मेटिक अधिनियम, यू.एस.ए के तहत जीआरएएस सूची में है। यह गैर विषैले है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:-

इनका पुनरोत्पादन बहुत कम होता है क्योंकि बीज की अंकुरण क्षमता 3-5 प्रतिशत से तक होती है, उनमें भी पौध प्रतिशत बहुत कम (10 प्रतिशत से कम) होता है। ऐसी स्थिति में इस उपयोगी वृक्ष की सतत संख्या वनों में रहे उसके लिये उपलब्ध नई पौध को हर हालत में सुरक्षित रखना चाहिए। जहाँ कही इनकी पौध हो इनके चारों ओर भूमि एवं जल संरक्षण के माध्यम से उन्हें संरक्षित किया जाये तथा आग एवं चराई से सुरक्षित रखा जाये। जो वृक्ष एक बार गोंद निकालने के लिये उपयोग में लाये गये है उनको कम से कम 2 वर्षों का विश्राम दिया जाना चाहिए। प्रायः वन क्षेत्रों में इस प्रजाति को बहुत महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि यह कम मुल्यवान ईमारती लकड़ी मानी जाती है और इसके गोंद का सही गुण एवं उससे बनने वाले उत्पादनों के महत्व को कम आँका जाता है। जब तक यह माना जायेगा कि यह एक जलाऊ किस्म का वृक्ष है तब तक उसका सही संरक्षण एवं प्रबंधन नहीं हो सकेगा। वन क्षेत्रों में प्रति हेक्टेयर लगभग 800-1000 वृक्ष धावड़ा के रहे ऐसा प्रयास करना चाहिए। इस अनुपात से उनके स्थापित पुनरोत्पादन 1500-2000 तक होना चाहिए। धावड़ा गोंद विदोहन के लिये ऐसे वन क्षेत्रों का चयन किया जाये जहाँ पर इस अनुपात में वृक्ष एवं पुनरोत्पादन उपस्थित है। पतझड़ वाले वन क्षेत्रों में जो पत्तियाँ गिरती है वह उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

6. प्रजाति का प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- यह आवश्यक है कि धावड़ा को वन क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण प्रजाति मानते हुये उसको गोंद पैदा करने और उसका मूल्य संवर्धन करके लाभ लेने के लिये काम करना चाहिए।
- कुछ अनुसंधान बताते है कि प्रति हेक्टेयर पतझड़ वाले वन में पत्ती के बायोमॉस (आर्गनिक पदार्थ) का योगदान 10-15 प्रतिशत तक होता है। यह वनों की कार्बन उत्सर्जन में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसे स्थिति में इन वन क्षेत्रों का सही प्रबंधन एवं संरक्षण बहुत आवश्यक है।
- गोंद निकालने की प्रक्रिया पूर्ण रूप से विनाशविहीन हो इसके बारे में ग्रामीणों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि गलत विदोहन से इनकी आय में गिरावट होगी।
- प्राकृतिक अंकुरण विधि को अपनाना चाहिये जिससे पौधे नष्ट न होने पावें।
- सुझाये गये उपायों के लिये हितधारकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय-समय पर करेगी।

7. प्रसंस्करण की संभावानए:-

प्रंसस्करण के लिये सभी प्रकार के गोंद में सफाई और ग्रेडिंग दो महत्वपूर्ण कार्य है। प्रायः गोंद में संग्रहण के समय पेड़ के छिलके तथा अन्य बाहय पदार्थ मिले रहते है जिससे व्यापारी उसकी कम कीमत आंकते हैं। चित्र में दर्शाये अनुसार यदि बाहय पदार्थ निकाल दिये जाये तथा गोंद को सोलर टनल या छांये में सुखाया जाए तो उसका रंग और गुणवत्ता बनी रह सकती है और उससे उचित मूल्य मिल सकता है। यह कार्य महिला स्वा-सहायता समूह अच्छी तरह से करके 40 प्रतिशत अधिक मूल्य अर्जित कर सकती है। घट्टी के बडे डल्ले को मुख्य रूप से पीसकर संसाधित किया जाता है जिसमें गोंद को बारीक पाउडर में बदल दिया जाता है। हालाँकि, उपभोक्ता की माँगों के अनुसार विभिन्न अन्य आकार के कणों को अलग किया जाता है। कण टूटने की प्रक्रिया के दौरान, स्थानांतरण, आकांक्षा और घनत्व तालिका पृथक्करण द्वारा गोंद से अशुद्धियों को हटा दिया जाता है। गोंद की घिट्टी चूर्ण प्राप्त करने के लिए घुलनशील अंश को सुखाने के लिए स्प्रे पर कुछ काम किया गया है।

चित्र : धावडा का स्वच्छ एवं सुखाया हुआ गोंद

18. बबूल (एकेसिया नीलोटिका)

बबूल(एकेसिया नीलोटिका) एक बहुउद्देश्यी पेड़ है बबूल का पेड़ जिसे स्थानीय भाषा में देशी कीकर कहा जाता है। यह लकड़ी, ईंधन, छाया, भोजन, चारा, शहद, डाई, गोंद और बाड़ प्रदान करता है। यह मिट्टी के सुधार, मिट्टी के संर्वान, आग और हवा से सुरक्षा, जैव विविधता और आभूषण के लिए एक आश्रय स्थल के रूप में पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। यह व्यापक रूप से जातीय-चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। स्थानीय भाषा में यह काबुली कीकर, विलायती खेजरा या विलायती बबूल के नाम से जाना जाता है।

1.पौधे का आकार:- यह मध्यम आकार का 7 से13 मीटर लंबा होता है, जिसमें 20 से 30 सेंटी मीटर सदाबहार पेड़ के तने के व्यास के साथ एक छोटा ट्रंक होता है और पंख वाले फो-लिग के साथ गोल फैला हुआ ताज होता है। छाल खुरदरी गहरे भूरे से लेकर लगभग काले रंग की होती है जिसमें लंबे समय तक और गहरी दरार निश्चित होती है। पत्तियाँ 2.5-5 सेमी लंबी होती हैं, स्पिनसेंट स्टिप्यूल्स के साथ बाइपिनेट, पिनन्यूल्स संकीर्ण रूप से आयताकार होते हैं। फलियाँ आकार की, 7.5-15.0 सेमी, गोलाकार बीजों के बीच सिकुड़ी होती हैं। इसकी पत्तियां बहुत छोटी होती हैं। इस पेड़ में कांटे होते हैं। गर्मी के मौसम में बबूल के पेड़ पर पीले रंग के गोलाकार गुच्छों में फूल खिलते हैं। ठंड के मौसम में फलियां आती हैं। बबूल की छाल और गोंद का व्यवसाय किया जाता है। यह अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ने वाली, सूखा प्रतिरोधी बहुउद्देशीय फलियां है जिसमें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता होती है। यह पोषक तत्वों के लिए मिट्टी के स्तंभ का गहन रूप से दोहन कर सकती है बबूल लगा कर पानी के कटाव को रोका जा सकता है। जब रेगिस्तान अच्छी भूमि की ओर फैलने लगता है, तब बबूल के जंगल लगा कर रेगिस्तान के इस आक्रमण को रोका जा सकता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इसका उपयोगी भाग गोंद होता है जिसका उपयोग औषधी के रुप में किया जाता है बबूल की दातुन दातों को स्वच्छ और स्वस्थ रखती है। बबूल की लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है। इसकी लकड़ी को ग्रामीण लोग महत्व देते हैं, इसके पत्ते, छाल और फली को चारे के रूप में उपयोग किया जाता है, और गोंद के कई उपयोग हैं। फूल उभयलिंगी और हल्के पीले रंग के होते हैं। विशिष्ट छाल पैटर्न के कारण मगरमच्छ की छाल का पेड़ टर्मिनलिया टोमेंटोसा इनमें से एक है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- परंपरागत रूप से छाल को छीलकर या कुल्हाड़ी से पेड़ के आधार में गहरी कटौती करके टैप किया जाता है और इस प्रक्रिया में पौधे विभिन्न बिंदुओं पर घायल हो जाते हैं और केवल कुछ मात्रा में गोंद का उत्पादन करते हैं। संग्राहको द्वारा बार-बार एक ही जगह घाव/चीरा लगाने से वृक्ष कुछ समय बाद नष्ट हो जाते हैं, जिससे की पुनरोत्पादन में कमी आ जाती है एवं गोंद का उत्पादन कम हो जाता है। गोंद निकालने के अवैज्ञानिक तरीके के कारण गोंद उच्च गुणवत्ता वाला नहीं होता परिणाम स्वरूप व्यापारी संग्राहक से बहुत कम दाम पर खरीदता है।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधि:- स्थानीय लोगों एवं ज्यादातर आदिवासियों द्वारा रिसाव को हाथ से उठाया जाता है, और कई दिनों तक धूप में सूखने के लिए रखा जाते हैं। प्रसंस्करण केंद्रों पर, छाल के साथ गोंद और बिना छाल के गोंद को छांटा जाता है। छाल को हाथ से उठाया जाता है और गोंद से हटा दिया जाता है। छाल को प्रसंस्करण मशीन में भी डाला जाता है जहां छाल को गोंद से अलग किया जाता है। बारीक अशुद्ध कणों की जांच की जाती है और इन्हें हटा दिया जाता है। फिर गोंद को रंग और अशुद्धता की मात्रा के अनुसार विभिन्न ग्रेडों में हाथ से छांटा जाता है।

उन्नत वैज्ञानिक टैपिंग तकनीकों को नियोजित करने की तत्काल आवश्यकता है, अर्थात इथेफ़ोन का अनुप्रयोग। छाल में चीरा लगाकर या स्ट्रेस हार्मोन एथिलीन या एथिलीन-रिलीज़ करने वाले यौगिकों जैसे कि एथेफ़ोन (2-क्लोरोइथाइलफ़स्फ़ोनिक एसिड) के साथ गोंद की उपज बढ़ाने के लिए पेड़ों का दोहन किया जाता है। एथेफ़ोन का उपयोग पैरा रबर (हेविया ब्रासिलियन-सीस), पाइन में राल वृद्धि बबूल सेनेगल में गोंद उत्पादन बबूल निलोटिका में लेटेक्स प्रवाह को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता है।)

एनोगेसस लैटिफोलिया, ऐजेडीरेक्टा इंडिका। यह मैनजिफेरा इंडिका और कमिफोरा वाइटी में गमरेसिनोसिस को भी बढ़ाता है। हालांकि, गोंद निकालने के वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करके गम टैपिंग न केवल पेड़ के जीवन काल को बनाए रखता है बल्कि उच्च अंतरराष्ट्रीय मूल्य की अच्छी गुणवत्ता वाला गोंद भी प्राप्त करता है।

वृक्ष के तने पर चीरा लगा कर गोंद को एकत्र किया जाता है फिर इसे धूप में सुखाकर संग्राहित करते है। गोंद का दोहन वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करके गोंद का उत्सर्जन न केवल पेड़ के जीवन काल को बनाए रखता है बल्कि उच्च अंतरराष्ट्रीय मूल्य के साथ अच्छी गुणवत्ता वाला गोंद भी देता है।

5. प्राकृतिक पुनरोत्पादन की विधि:- इसमें पुनरोत्पादन बहुत अच्छा होता है तथा पौधे तेजी से वृद्धि करते है। इसकी कॉपिस क्षमता भी बहुत अच्छी होती है। कुछ प्रमाण हैं कि बबूल नीलोटिका एक खरपतवार है। लेकिन अन्य क्षेत्रों में इसे वानिकी या वाटर लोंगिंग वाले भूमि के (जल संग्रह क्षेत्र) के सुधार के लिए लगाया जाता है। यह दो प्रकार की मिट्टी यानी नदी की कछारी मिट्टी और काली कपास मिट्टी में अच्छी तरह से उगता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- बीज धारित पौधों को चिन्हांकित करना चाहिए।
- उचित देखभाल कर विनाशविहीन विदोहन सुनिश्चित कर सकें।
- नए पेड़ों जिनकी तने की मोटाई 80 सेमी.से कम हो, से गोंद नहीं निकालना चाहिए।
- प्राकृतिक रूप से अंकुरित पौधों की देखभाल संग्राहकों द्वारा की जानी चाहिए ताकि वे पूर्ण रूप से एक नए वृक्ष के रूप में विकसित

हो अर्थात इस तरह के पौधों को गोद ले सकते हैं।

- निगरानी एवं मूल्यांकन : ऊपर बताये गए नियमों का पूर्ण रूप से पालन सुनिश्चित कराने के लिए एक स्थानीय समिति हो जिसमें हितधारक शामिल हों और इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन करें।

7. प्रसंस्करण की संभावनाः-

प्रसंस्करण के लिये सभी प्रकार के गोंद में सफाई और ग्रेडिंग दो महत्वपूर्ण कार्य है। प्रायः गोंद में संग्रहण के समय पेड़ के छिलके तथा अन्य बाहय पदार्थ मिले रहते है जिससे व्यापारी उसकी कम कीमत आंकते हैं। चित्र में दर्शाये अनुसार यदि बाहय पदार्थ निकाल दिये जाये तथा गोंद को सोलर टनल या छांये में सुखाया जाए तो उसका रंग और गुणवत्ता बनी रह सकती है और उससे उचित मूल्य मिल सकता है। यह कार्य महिला स्व-सहायता समूह अच्छी तरह से करके 40 प्रतिशत अधिक मूल्य अर्जित कर सकती है।

चित्र : सूखाकर ग्रेडिंग के पश्चात्

19. गुग्गुल (कोमीफेरा वेहटाई)

भारतीय हर्बल संपदा में गुग्गुल (कोमीफेरा वेह्टाई) एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। इससे ओलियो गम रेजिन उपलब्ध होता है जिसको इसकी छाल से निकाला जाता है। सुश्रुता संहिता (600 बीसी), एक प्रसिद्ध चिकित्सा साहित्य, में इसके ओलियो गम रेजिन की उपयोगिता का वर्णन विभिन्न बीमारियों जैसे मोटापा और लिपिड मेटाबोलिज्म के उपचार के लिए किया है। दुर्भाग्य से गुग्गुल के पौधे इनके धीमी वृद्धि, कम बीज उत्पादन, खेती न होना, बीजों की कमजोर अंकुरण दर और दवा उद्योग और धार्मिक उद्देश्यों के लिए अत्याधिक अवैज्ञानिक तरीके से गोंद निकालने के कारण यह प्रजाति संकटपन्न हो गई है।

1. पौधे का आकार:- यह एक बहुवर्षीय झाड़ीनुमा पौधा है जिसके तने की ऊँचाई 4 मीटर तक होती है जिस पर पतली कागजी छाल होती है। पत्तियाँ साधारण या त्रिपर्णी, पर्ण अंडाकार, 1.5 सेमी.लम्बे, 0.5 से 2.5 सेमी.चौड़ी, अनियमित तथा दांतेदार होती है। कुछ पौधों पर उभयलिंगी और नर पुष्प और कुछ पौधों पर मादा पुष्प लगते हैं। पुष्पों का रंग लाल से गुलाबी होता है जिसमें 4 पंखुडियाँ होते हैं। इसके फूल मार्च-अप्रैल में खिलते है एवं फल छोटे बेर के समान लाल रंग के होते है। इसके तने एवं शाखाओं से गोंद निकलता है इस गोंद को ही गुग्गुल कहा जाता है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इस पौधे का उपयोगी भाग गोंद होता है एवं इसमें गुग्गुल स्टीरोल तत्व सक्रिय होता है। इससे ओलियो गम रेजिन उपलब्ध होता है जिसको इसकी छाल से निकाला जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:-

- सितम्बर से जून तक वृक्ष के तने व शाखाओं के विभिन्न भागों पर चीरा लगाते हैं।
- चीरे की गहराई 3 इंच और लम्बाई 1-2 इंच होती है।
- 15-20 दिन तक सुबह और शाम के समय गोंद का स्राव अधिकतम होता है।
- एक पेड़ से लगभग 0.5 से 1.5 किग्रा. गोंद निकलता है।
- वृक्ष फफूंद के संक्रमण के प्रति सुग्राही हो जाता है।
- एक ही पेड़ से 2-4 वर्ष तक लगातार गोंद निकालने से पौधा कमजोर होकर तेज हवाओं में गिरकर नष्ट हो जाता है।
- गोंद निकालने के अवैज्ञानिक तरीके के कारण गोंद उच्च गुणवत्ता वाला नहीं होता परिणाम स्वरूप व्यापारी संग्राहक से बहुत कम दाम पर खरीदता है।

4. विनाशविहीन विदोहन का तरीका:-

(i) विदोहन के लिए पेड़ का चयन- अनुभव ये बताता है कि हमें गोंद निकालने के लिए 8-10 वर्ष पुराने पेड़ का ही चयन करना चाहिए। यद्यपि गुग्गुल का वृक्ष छोटे से लेकर मध्यम आकार का होता है, पेड़ चाहे छोटे आकार का हो या बड़े एक पेड़ में एक वर्ष में एक ही चीरा लगाना चाहिए। जब चीरे का घाव पूर्ण रूप से भर जाय तो अगले वर्ष दूसरा चीरा पहले के विरुद्ध दिशा में लगायें। इस प्रकार प्रत्येक पेड़ में 4 वर्ष में 4 चीरे होंगे इसके बाद दो वर्ष तक चीरा न लगाने की अनुसंशा की गई है।

(ii) छाल के गुण के आधार पर वृक्ष की परिपक्वता की पहचान- छाल का गहरा भूरा रंग पेड़ की परिपक्वता का सूचक है। अतः गहरे भूरे रंग की छाल वाले पेड़ से ही गोंद निकालें।

(iii) गोंद निकालने की विधि:

- गुग्गुल के पौधे 8 वर्ष के हो जाने पर इसकी मुख्य तने एवं शाखाओं को छोड़कर, पतली शाखाओं की कटाई एवं छटांई (प्रूनिंग) की जानी चाहिये। इस कार्य हेतु जनवरी-फरवरी माह का समय उपयुक्त है क्योंकि इसमें इस समय रेजिन की मात्रा सर्वाधिक होती है।
- गुग्गुल निकालने के लिये पौधों में बड़ा चीरा लगाया जाता है। अधिक बड़ा चीरा लगा देने के पश्चात् पौधे के गम्भीर रुप से जख्मी होने की पूरी संभावना बनी रहती है, जिससे पौधा पूर्णतः नष्ट हो सकता है। अतः बड़ा चीरा न लगाएं।
- विदोहन के समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि प्रूनिंग करते समय मुख्य तने एवं शाखाओं को हानि न पहुंचे। एक बार छंटनी के बाद वृक्ष पुनः दो वर्षों बाद छंटनी के योग्य हो जाता है एवं यह क्रम चलता रहता है।

गुग्गुल का पौधा जब 8 साल का हो जाता है तो इसें से एक प्रकार का ऑलियोरेजिन निकलना प्रारम्भ होता हैं, जो कि गुग्गुल कहलाता है। परम्परागत तरीके में इसके तने में तेज चाकू से तीन इंच गहराई तक तथा 1-2 इंच लम्बा चीरा लगाया जाता हैं, जिससे एक चिपचिपा पदार्थ रिसकर निकलना आरम्भ हो जाता है। रिसने का क्रम लगभग 15-20 दिन तक सुबह व सायंकाल के समय अधिक मात्रा में होता है। इस प्रकार प्रत्येक पौधे से एक सीजन में 500 से 1500 ग्राम तक गुग्गुल प्राप्त होता है।

विदोहन की आधुनिक वैज्ञानिक विधि:-

- पेड़ के तने को एवं पेड़ के नीचे 1 मीटर क्षेत्र को साफ करें ताकि गोंद निकालने वाला व्यक्ति आराम से खड़ा हो सके।
- गुग्गुल की आयु 8 वर्ष होने पर माह दिसम्बर से मार्च के मध्य इसके मुख्य तने व मोटी शाखाओं को छोड़कर हाथ के अंगूठे से कम मोटी शाखाएं कटर/कटिंग प्लायर से काटकर एकत्र कर ली जाती है।
- इस प्रकार छंटाई की गई शाखाओं को चिपर-मशीन की सहायता से 1-2 सेंटीमीटर छोटे लंबाई के टुकड़ों में काटकर धूप में सुखाया जाता है। छंटाई करने का सबसे उपयुक्त समय मध्य जनवरी माह से मध्य फरवरी माह है।
- गुग्गुल की बारिक कतरनों को पीसकर साल्वेंट एक्सट्रेक्शन प्रक्रिया से गुग्गुल निकाल लिया जाता है। छंटाई की गई शाखाओं के किनारों पर रिसकर एकत्र हुए स्राव को भी इकट्ठा कर लिया जाता है।
- वैज्ञानिक विधि से निकाला गया गुग्गुल अर्धपारदर्शी, चमकीला, हल्के सुनहरे रंग का होता है। यह प्रक्रिया प्रत्येक 2 वर्ष बाद पुनः दोहराई जाती है जिससे विनाश विहीन पद्धती से गुग्गुल प्राप्त किया जा सकता है। एक बार छंटाई करने के बाद शेष बचे हुए गुग्गुल के पौधे में नई शाखाएं कुछ समय बाद अपने-आप विकसित हो जाती है।
- नये अनुसंधानों के अनुसार 2 साल के उपरांत गुग्गुल के पौधे को एक खास आकार में कांट-छांट कर छोटी-छोटी टहनियाँ प्राप्त होती है। इससे मुख्य तने की मोटाई में अच्छा विकास होना पाया गया है। वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार 4 से 5 वर्ष आयु के

पौधे से भी गोंद प्राप्त करने की प्रक्रिया प्रारंभ की जा सकती है, किन्तु इस आयु में रिसन की मात्रा अत्यंत कम रहती है। प्राप्त गोंद को सुखाकर पॉलीथीन लाइन्ड बोरों में भरकर 8-10 प्रतिशत आर्द्रता व 15-25 डिग्री कमरा तापमान पर भण्डारित किया जाता है।

(iv) **गोंद निकालने के लिए पेड़ की उम्र एवं समय:** वैसे तो गुग्गुल के 4 वर्ष के पेड़ से गोंद निकाला जा सकता है परन्तु मात्रा कम मिलेगी इसलिये अधिकतम गोंद प्राप्ति के लिए 8-10 वर्ष के पेड़ से ही गोंद निकालें। गोंद निकालने का सही समय नवम्बर से जनवरी माह है।

(v) **गोंद निकालने की सीमा:** एक वर्ष में एक पेड़ में केवल एक ही चीरा लगाना चाहिए और दूसरा चीरा तभी लगायें जब पहले चीरे का घाव पूर्ण रूप से भर जाये।

(vi) **परिवहन के लिए पैकेजिंग (जूट के बैग, कनस्तर, कार्टून):** इसकी पैकिंग हर सिंगार या लेटाना की शाखाओं से बनी डलियों में की जाती है। इससे पर्यावरण को भी कोई नुकसान नहीं होता है और यह पर्यावरण सम्मत तरीका है। जहां पर ये दोनों ही प्रजातियाँ नहीं पाई जाती हैं वहां पर बांस की टोकरी का उपयोग किया जाता है। फिर इन डलियों को ट्रक द्वारा परिवहन किया जाता है।

(vii) **परिवहन की विधि एवं समय:** इसका परिवहन भी रात्रि के समय ही करें ताकि इसको अत्यधिक गर्मी एवं धूप से बचाया जा सके इससे इसकी गुणवत्ता बरकरार रहेगी और अपशिष्ट से बचा जा सकता है।

(viii) **विदोहन पश्चात प्रबंधन:** निकाले गए गोंद को धूप में सुखाकर पलिथीन बैगों में भरकर 15-25 डिग्री सेल्सियस व 8-10 नमी पर भण्डारण करें।

(ix) **नुकसान एवं अपशिष्ट को कम करने का तरीका:** तने की केंबियम को बचाने के लिए 3 इंच से कम गहरा चीरा लगाएं ताकि फफूंद का संक्रमण और पूरा पेड़ नष्ट न हो। संक्रमित वृक्ष से गोंद नहीं निकालना चाहिए।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- इस पौधे का पुनरोत्पादन तने की कटिंग से एवं बीजों द्वारा किया जाता है।

6. प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

(i) बीज वाले पौधों को चिंहित करें।

(ii) नए पेड़ों जिनकी तने की मोटाई 80 सेमी.से कम हो, से गोंद नहीं निकालना चाहिए।

(iii) प्राकृतिक रूप से अंकुरित पौधों की देखभाल संग्राहकों द्वारा की जानी चाहिए ताकि वे पूर्ण रूप से एक नए वृक्ष के रूप में विकसित हो अर्थात इस तरह के पौधों को गोद ले सकते हैं।

(iv) निगरानी एवं मूल्यांकन : ऊपर बताये गए नियमों का पूर्ण रूप से पालन सुनिश्चित कराने के लिए एक स्थानीय समिति हो जिसमें हितधारक शामिल हों और इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन करें।

7. प्रसंस्करण की संभावना:- प्रंसस्करण के लिये सभी प्रकार के गोंद में सफाई और ग्रेडिंग दो महत्वपूर्ण कार्य है। प्रायः गोंद में संग्रहण के समय पेड़ के छिलके तथा अन्य बाहय पदार्थ मिले रहते है जिससे व्यापारी उसकी कम कीमत आंकते हैं। चित्र में दर्शाये अनुसार यदि बाहय पदार्थ निकाल दिये जाये तथा गोंद को सोलर टनल या छांये में सुखाया जाए तो उसका रंग और गुणवत्ता बनी रह सकती है और उससे उचित मूल्य मिल सकता है। यह कार्य महिला स्व-सहायता समूह अच्छी तरह से करके 40 प्रतिशत अधिक मूल्य अर्जित कर सकती है।

चित्र : गुग्गुल का गोंद

20. अश्वगंधा (विथानिया सोमनीफेरा)

अश्वगंधा, जिसे विथानिया सोमनीफेरा, विंटर चेरी और इंडियन जिनसेंग के नाम से भी जाना जाता है, एक झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसकी जड़ों और जामुन सहित पौधे, आयुर्वेद, भारत की पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली एवं यूनानी में हजारों वर्षों से उपयोग किया जाता रहा है। अश्वगंधा व्यापक रूप से शुष्क भागों में उगाया जाता है। राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश भारत में प्रमुख अश्वगंधा उत्पादक प्रदेश हैं, यह लगभग1.50 मीटर ऊंचाई तक पहुंचने वाला एक सीधा शाखाओं वाला पौधा है।

1. पौधे का आकार:- अश्वगंधा एकवर्षिया पौधा है प्राकृतिक रहवास में कभी-कभी संरक्षण से बारहमासी पौधा हो जाता है, इसकी लंबाई 1.50 मीटर तक होती है यह पौधा भूरे रंग के रेशे से ढ़ंका हुआ होता है इसकी पत्तियाँ अण्डाकार होती है और इसकी लंबाई 5-15 सेमी.होती है। इसके फूल तारे के आकार के छोटे और हरे पीले रंग के होते हैं। अश्वगंधा आयरन से भरपूर होता है और खून में हीमोग्लोबिन की मात्रा को बढ़ाने के लिये उपयोग में लाया जाता है। चिकित्सा पद्धति में अश्वगंधा की मांग बढ़ती जा रही हैं। इसकी भारत में खेती की जा रही है। इसके पौधे सीधे, शाखित, सदाबहार तथा झाड़ीनुमा 50-125 सेमी लंबे होते है।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- इसका संपूर्ण पौधा उपयोगी होता है। पत्ते कड़वे होते हैं और बुखार, दर्दनाक सूजन में उपयोग किया जाता है। फूल कसैले, मूत्रवर्धक और कामोत्तेजक हैं। बीज मिनाशक होते हैं और कसैले और सेंधा नमक के साथ मिलकर कर्निया से सफेद धब्बे हटाते हैं। इससे बना अश्वगंधारिष्ट हिस्टीरिया, चिंता, स्मृति हानि, बेहोशी आदि में प्रयोग किया जाता है।
यह उत्तेजक के रूप में भी कार्य करता है और शुक्राणुओं की संख्या को बढ़ाता है। जड़ से घोड़े की गंध आती है (अश्व), इसलिए इसे अश्वगंधा कहा जाता है (इसे खाने से घोड़े की शक्ति मिलती है)। यह आमतौर पर बच्चों की दुर्बलता (जब दूध के साथ दिया जाता है, तो यह बच्चों के लिए सबसे अच्छा टॉनिक है), बुढ़ापे से दुर्बलता, गठिया, वात की खराब स्थिति, ल्यूकोडर्मा, कब्ज, अनिद्रा,

तंत्रिका टूटने आदि में उपयोग किया जाता है।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- सम्पूर्ण पौधे को जड़ सहित उखाड़ लिया जाता है और जमीन से ऊपर के तने को प्रकन्द से अलग करके फेंक देते हैं और प्रकन्द को धूप में थोड़ा सूखने के लिए रख देते हैं। इस प्रक्रिया में पौधे के पुनरोत्पादन के लिए आवश्यक कन्द पूर्ण रूप से निकलने से नए पौधे के अंकुरण की सम्भावना क्षीण हो जाती है और परिणाम स्वरूप इनके पौधों की संख्या धीरे-धीरे कम होने लगती है।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधियाँ:-

- **विदोहन की विधि और समय:-** परिपक्व पत्तियों और पीले-लाल जामुन के सूखने से आंका जाता है। दिसंबर के बाद से फूल आना और फल लगना शुरू हो जाते हैं। फसल की जड़ों के लिए जनवरी से मार्च यानी बुवाई के 150 से 180 दिन बाद खुदाई करके काटा जाता है। खुदाई के समय मिट्टी में नमी होनी चाहिए। पावर टिलर या देशी हल से जड़ों को खोदा जाता है या जुताई की जाती है। पौधे की जड़ को सावधानी से बाहर निकाला जाना चाहिए ताकि छोटी पार्श्व जड़ों को भी नुकसान न पहुंचे। अश्वगंधा को सूखे में काटा जाना चाहिए, बारिश या सुबह के समय जब ओस होती है तब नहीं तोड़ना चाहिये।
- **विदोहन के पश्चात प्रबंधन:-** जड़-तने को जमीन से 1 से 2 सेंटीमीटर ऊपर काटकर जड़ों को हवाई हिस्से से अलग किया जाता है। खोदने के बाद जड़ों को धोकर 7 से 10 सेंटीमीटर छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर धूप या शेड में सुखाया जाता है। जड़ों को 10-12 प्रतिशत नमी की मात्रा तक सूखाया जाना चाहिए। जड़ के टुकड़ों को उसकी लंबाई और मोटाई के अनुसार निम्नलिखित 3-4 ग्रेड में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- **तुड़ाई के बाद का प्रसंस्करण:-** आमतौर पर सबसे महत्वपूर्ण चरण होता है। उत्पाद की अंतिम गुणवत्ता का निर्धारण करने के लिये कटी हुई उपज किसी भी प्रदूशण, गिरावट से रोका जाना चाहिए। तीन प्रकार के मूल्य वर्धित उत्पाद अर्थात अश्वगंधा मीठा और नमकीन बिस्किट, अश्वगंधा चूर्ण बल, और अश्वगंधा पेय, अश्वगंधा जड़ पाउडर, अश्वगंधा पत्ती पाउडर और अश्वगंधा जड़ + पत्ती पाउडर को शामिल करके तैयार किया गया था। इन सभी उत्पादों का बाजार उपलब्ध है। इसका उपयोग पौरूष बढ़ाने के लिये किया जाता है।
- **भंडारण की विधि:-** सूखे जड़ों पर नमी और कवक के हमले से बचने के लिए इसे टिन के कंटेनर में संग्रहित किया जाना चाहिए। जडों के मूली जैसे आकार को हाथ से अलग से तोड़ा जाता है। बीज निकालने के लिए उन्हें सुखाया और कुचला जाता है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- इन पौधों की जड़ों का विदोहन 75 प्रतिशत करना चाहिए बाकी 25 प्रतिशत छोड़ देना चाहिये जिससे की पुनरोत्पादन अधिक समय तक होता रहे।

6 प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना:-

- बीज धारित पौधों को चिन्हांकित करना चाहिए।
- पुनरोत्पादन के लिए 75 प्रतिशत तक ही जड़ों को निकालना चाहिए।
- प्राकृतिक स्थानों जहाँ अश्वगंधा उग रहा हो उसको स्थानीय लोगों द्वारा गोद (Adopt) लिया जाए और उसकी उचित देखभाल कर विनाशविहीन विदोहन सुनिश्चित कर सकें।
- मूल्यांकन और निगरानी हो।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- अश्वगंधा की जड़ को धोकर साफ करके और 50 डिग्री सेल्सियस के तापमन पर कैबिनेट के अंदर सुखाना चाहिए। फिर एक हैमर मिल में पाउडर करके सुखा लेना चाहिए। इसे एक एल. डी. पी. ई. बैग में पैक कर कमरे के तापमान पर संग्रहित किया जा सकता है इस प्रकार के प्रसंस्करण से मूल्य में 30-50 प्रतिशत की वृद्धि बेचने पर मिल सकती है।

चित्र : अश्वगंधा की जड़ का पाउडर

21. गिलोय; (टीनोस्पोरा कार्डिफोलिया)

गिलोय एक बड़ी झाड़ीनुमा पौध (बेल के रूप में) है। यह पूरे भारतवर्ष के उष्णकटिबंधीय वन क्षेत्रो में 300 मीटर ऊँचाईं पर पाई जाती है। इस पौधे को सामान्य रूप से गिलोय कहा जाता है जो हिन्दू पौराणिक शब्द है जिसका अर्थ है स्वर्ग का अमृत। इसका उपयोग ऋषि मुनियों के दीर्घ आयु में प्राणदायक औषधि के रूप में एवं युवा बनायें रखने के लिए किया जाता था।

1. पौधे का आकार:- गिलोय का तना गुदेदार और जड़ मांसल हवा, में बढ़ने वाली होती है। इनकी छाल क्रीमी सफेद से लेकर शूरी और बाँई और से छल्ला बनाई हुई होती हैं। पत्तियाँ झिल्लीदार एवं हृदय आकार की होती है। फूल छोटे और पीले से हरे पीले रंग के होते हैं। फूल में नर फूल गुच्छे के समान होते हैं एवं मादा फूल अकेले होते हैं। फल गोल चमकदार होते है। इसके बीज धुमावदार होते है। फल मांसल एक बीज वाले होते है। सामान्यतः फूल गर्मी में एवं फल शीत ऋतु में आतें है।

2. उपयोगी शग एवं सक्रिया तत्व:- इसका औषधिय शग तना हैं। इसका उपयोग देशी एवं आयुर्वेदिक दवाई के रूप में होता हैं। इसमें रासायनिक तौर पर पौधे के हर शग में ऐल्केलॉयडिस, स्टोरॉइड, सेसक्यूटरपेनॉइड, फिनोलिक्स, ऐलीफेटिक और पॉलीसेकेरॉइट यौगिक यह जड़ीबूटी लोगों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने में होती हैं। गिलोय को अमृत या गुड़छी हिन्दी में कहा जाता हैं। इसकी

पत्तियां हृदय के समान आकार में और पान के पत्ते के समान दिखता हैं। गिलोय मधुमेह के मरीजों के लिए उपयोगी होता है। इसका स्वाद कड़वा होता है। इसका उपयोग मधुमेह नियंत्रण में किया जाता हैं। गिलोय शरीर से जहरीले पदार्थ (टॉक्सिन) निकालने, खून को शुध्द करने और बैक्टीरिया से विरूद्ध कार्य करता है। यह विशेष कर लीवर से जुड़ी बीमारी एवं ज्वर को कम करने में सहायक होता है। यह स्वाईन फ्लू, डेंगू और मलेरिया जो ज्वर बढ़ाते है, उन्हे कम करने में सहायता करता हैं।

गिलोय में निम्नानुसार तत्व पाये जाते हैं:- 17.69 प्रतिशत नमीयुक्त पौधों में निम्न अवयव पाए जाते है।

प्रोटीन(Protein)	-	4.13%
वसा (Fat)	-	13.12%
राख (Ash)	-	12.01%
रेशा (Fiber)	-	37.90%

अभी तक जो अनुसंधान हुये है गिलोय के उपयोग से कोई दुष्प्रभाव देखने को नहीं मिला है। किसी-किसी व्यक्ति में इसके बढ़ते उपयोग से कब्ज की शिकायत और ब्लड शुगर कम हो जाता है। कुछ वैद्य गर्भवती महिलाऐ तथा बच्चों को दूध पिलाने वाली महिलाओं के उपयोग के खिलाफ सचेत करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इसके अत्याधिक प्रयोग से कुछ अन्य व्याधियां हो सकती है जिनका विवरण ऊपर दिया गया हैं।

3. विदोहन की प्रचलित विधि:- वर्तमान में ग्रामीण इसका विनाशयुक्त दोहन करते है। वे पूरे पौधे को जड़ सहित निकाल लेते हैं, जिससे उन्हें कम समय मे अधिक जड़ी-बूटी मिल जाए। ऐसी स्थिति में पौधे क्षेत्र में कम होने लगते है परिणाम स्वरूप संग्राहक अव्यस्क पौधे (कच्ची उम्र के पौधे) ही निकाल लेते हैं इस प्रकार विनाश युक्त दोहन के लिये संग्राहक से, वे व्यापारी आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाकर उन्हें कच्चे पौधों का विदोहन करने को उकसाते है। वे नहीं जानते है कि यह बहुमूल्य पौधा समाप्त हो जाने के बाद इसका कोई दूसरा विकल्प सूक्ष्म कीटाणु बैक्टीरिया फंगस के विरूद्ध नहीं रहेगा। इस प्रकार आने वाले समय में अगली पीढ़ी को इस आयुर्वेदिक ''अमृत रस'' का विकल्प खोजना पड़ेगा।

4. विनाश विहीन विदोहन की विधि:- जब मार्च और अप्रैल में पत्तियों का गिरना (पतझड़) शुरू हो जाता हैं, तब नुकीले उपकरण की सहायता से भूस्तर से 1 फीट ऊपर से तने को कांटते हैं। तने की काट का नाप 3-4 इंच लंबा होता हैं। बाजार में तने को गिलोय या गुड़ची के नाम से बेचा जाता है। तने से बचा हुआ भाग पुनरोत्पादन के लिये भूमि में ही छोड़ दिया जाता हैं।

विदोहन के लिये पौधे का चुनाव	विदोहन के लिये व्यस्क पौधे का चुनाव करते हैं जिसके तने का माप 3-4 इंच व्यास का होता है और भूरा रंग होता है।
विदोहन के लिये उपयोग की जाने वाली विधियाँ	विशेष रूप से तैयार किया गया (हंसिया बास्केट, हाथ से तोडना शाखाओं को क्षति पहुंचाये बिना)
विदोहन के लिये समय एवं उम्र	तने को काटने का सही समय अप्रैल होता हैं जब पौधे की सारी पत्तियाँ गिर जाती है
परिवहन के लिये पैकेजिंग	कटे हुये तने के भाग को सुखाकर साफ और नमीमुक्त पॉलीथीन बैग में पैक करते हैं।
परिवहन विधि एवं समय	गिलोय का परिवहन रात्रि एवं सुबह किया जाना चाहिए।
विदोहन पश्चात प्रबंधन	गिलोय के तने वाले भाग को शेड में सुखाते हैं इसके पश्चात् तने को मोटाई के अनुसार अलग-अलग भागों में विभाजित कर देते हैं। फिर इन्हें साफ एवं नमीमुक्त पॉलीथीन बैग में भण्डारित कर देते हैं।
नुकसान या अपशिष्ट को कम करने का तरीका	छत पर फैला कर सुखाना।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- इसके पौधों की तने कि कटिंग से नर्सरी में तैयार किया जा सकता है। तनों की कटिंग की लंबाई 10-15 सेमी.होना चाहिये। इन कटिंगस को पॉलीथीन में मिटटी एवं खाद के मिश्रण में तिरछा गाड़ देना चाहिये। वैसे तो बिना किसी उपचार के स्फुटिक हो जाता है परंतु कुछ लोग जड़ बढ़ाने वाले हार्मोन (NAA) का उपयोग करते है। सामान्य कटिंग में पौधे 50-70 प्रतिशत तक होता है। वही हार्मोन से उपचार के पश्चात् पौधे बनने की प्रक्रिया तेज हो जाती हैं और उसमें 75-85 प्रतिशत पौधे तैयार हो जाते है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्ति करना:-

- बीज देने वाले पौधों को चिन्हित किया जाना चाहिए।
- अव्यस्क (3 इंच से कम व्यास) पौधों को नहीं काटना चाहिए।
- प्राकृतिक पौधों को अंगीकृत करके उनके चारो ओर भूमि एवं जल संरक्षण का कार्य करना चाहिये। उनके चारो ओर इस तरह से सुरक्षा दी जाये जिससे उन्हें चराई एवं आग से नुकसान न हो।
- निगरानी एवं समय-समय पर जाँच जरूरी हैं।

7. प्रसंस्करण की संभावनाये:- गिलोय के कटे हुये तने के भाग को सुखाकर साफ और नमीमुक्त पॉलीथीन बैग में पैक करके बेचा जा सकता हैं। गिलोय के टिंचर एवं अन्य उत्पाद आसमन प्रणाली से निकालने के लिये युनिट की स्थापना करना होता है जो उद्यौगिक ईकाइयों द्वारा ही किया जा सकता है। स्वा-सहायता समूह द्वारा अगर इनको टुकडों में काटकर सूखा लिया जाता है एवं पैकिट बनाकर बेचा जो तो उन्हें उचित मूल्य वृद्धि मिल सकती हैं।

चित्र - गिलोय का पाउडर एवं जूस

22. गुड़मार (जिमनेमा सिल्वेस्टेरे)

आमतौर पर हिंदी में 'गुड़मार' के रूप में जाना जाने वाला एक महत्वपूर्ण औषधीय बेल वाला पौधा है। इसका उपयोग सभी आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति में मधुमेह, गठिया, खांसी, अल्सर, पीलिया, अपच, कब्ज, आखों के दर्द और सर्पदंश के उपचार के लिये हजारों वर्षों से किया जाता रहा है। भारत में, यह आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में पाया जाता है। इसके प्रमुख पादप संघटक जिम्नेमिक एसिड, गुडमरीन और सैपोनिन हैं।

1. पौधे का आकार:- बेलों में पत्तियों का विन्यास (क्रम) एक दूसरे के विपरीत दिशा में होता है। पत्तियाँ अण्डाकार आकार में होती है। फूल छोटे, पीले, इसकी पत्तियाँ कड़वी एवं कसैली तीखी होती है। इनको खाने से मिठाई वाली इंन्द्रियाँ शुन्य हो जाती है जिससे इसे खाने के बाद मिठाई का स्वाद खत्म हो जाता है। मिठाई की संवेदी धारणा और इस अद्‌भुत संपत्ति के लिए इसे गुड़मार के रूप में जाना जाता है। इस पौध को 'शुगर डिस्ट्रयर' के नाम से भी जाना जाता है। गुड़मार के पत्तों में जैव सक्रिय संघटकों के त्रि-टेरपाइन का मिश्रण होता है और सैपोनिन्स अर्थात। जिम्नेमिक एसिड, जिमनेमेजेनिन और गुरमारिन उनके कारण यह पौधा एंटी-डायबिटिक गुण का प्रतिनिधित्व करता है।

गुड़मार एक धीमी गति से बढ़ने वाला बारहमासी बेल वाला पौधा है, जो पूरे भारत के वनों में पाया जाता है। यह मुख्य रूप से मध्य और दक्षिणी भारत के उष्ण कटिबंधीय वनों में पाया जाता है। मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले में यह घने रूप में पाया जाता है तथा यहाँ

से एकत्र करवा करहल, विजयपुर(श्योपुर) तथा शिवपुरी के जड़ी-बूटी के व्यापारी उसे दिल्ली तथा अन्य बाजारों में भेजते है। विश्व बाजार में इस पौध का दूसरी सबसे अधिक बिकने वाली दवाई बनाने का कच्चा माल है, जिसकी बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए वन क्षेत्रों से बाजार में पर्याप्त प्राप्त नहीं हो पा रही है। अतः इसकी खेती करके उत्पादन बढ़ाने का प्रयास विभिन्न औधोगिक संस्थानों द्वारा किया जा रहा है। इसके बावजूद संभवतः वन क्षेत्रों से प्राप्त होने वाले कच्चा माल की कम लागत होने के कारण माँग ज्यादा है। जड़ी-बूटी के व्यापारी प्रायः यह कहते है कि वन क्षेत्रों में पाई जाने वाली प्रजातियाों में रासायनिक अवयवों की मात्रा खेती से प्राप्त होने वाली प्रजातियों की तुलना में अधिक होती है। वास्तविकता यह है कि खेती में लागत अधिक होने से कच्चा माल महंगा मिलता है जबकि वन क्षेत्रो से प्राप्त होने वाले कच्चे माल आदिवासियों से एकत्र किये जाते है जो व्यापारियों को उनके द्वारा निर्धारित मूल्य पर बेचते रहते है। कम मूल्य प्राप्त होने का यह भी एक कारण है कि एकत्रीकरण के मौसम प्रारंभ होने पहले व्यापारी इन्हें बतौर अग्रिम राशि भी देते है जिससे वे उन्हीं के द्वारा निर्धारित दर पर बेचने के लिये विवश होता है। इसलिये सतत् गैर-जिम्मेदार विदोहन के कारण इन प्रजातियों का हास हो रहा हैं।

2.उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्व:- रासायनिक घटक उत्पाद में सक्रिय सिद्धांत के रूप में 7-9.6 प्रतिशत जिम्नेमिक एसिड होता है। इसके अलावा, ऐलेनिन, एमिनोब्यूट्रिक एसिड, आइसोल्यूसीन, वेलिन, एडेनिन, कोलीन, जिमनामिन(एल्कलइड), और कई अन्य तत्व पत्तियों से पृथक होते हैं। उपज प्रति हेक्टेयर लगभग1250 किलोग्राम सूखे वजन के पत्ते हर तीन महीने में प्राप्त किए जा सकते हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग मोटापे के खिलाफ खाद्य योजकों में भी किया जाता है। गुडमार में पेट संबंधी, मूत्रर्वाक भी होता है। इसमें खांसी को ठीक करने वाले गुण भी है। आदिवासियों द्वारा पौधे की जड़ का इस्तेमाल सर्पदंश के लिए एक अचूक दवा के रुप में किया जाता है। यह दवा आयुर्वेद में पारंपरिक रूप से उपयोग में लिया जाता है। इसके अद्वितीय गुणों के कारण ही पौधे का अत्यधिक दोहन किया जाता है और इससे यह प्रजाति धीरे-धीरे संकटग्रस्त हो रही है जिसके परिणाम स्वरूप श्योपुर एवं शिवपुरी के जड़ी-बूटी के बड़े व्यापारी इस प्रजाति का क्रय तमिलनाडू एवं कर्नाटक के खेती कर रहे किसानों से कम मूल्य पर क्रय करते हैं उनका यह भी कहना है कि श्योपुर के संग्राहक लकड़ी वाले भाग को एकत्रित उत्पाद में ज्यादा मिला देते है जो उचित नहीं है इसकी तुलना में तमिलनाडू एवं कर्नाटक से आने वाले माल में पत्ती एवं बेल (Climber) की पतली लकड़ी का अधिक भाग मिला रहता है जो प्रदाय करने के लिये अधिक मान्य है।

3.विदोहन की प्रचलित विधि:- पत्तों को हाथ से तोड़ा जाता है लेकिन शीघ्र विदोहन के दृष्टि से प्रायः पूरी टहनी से सभी पत्तियों का विदोहन कर लिया जाता है। व्यापारियों के अनुसार छोटी कच्ची पत्ती तथा टहनीयों की लकड़ी यदि 10 प्रतिशत से अधिक है तो उसको निकालकर सही वर्गीकरण करके प्रदान किया जाता है। जड़ी-बूटी इकठ्ठा करने वालों को भुगतान करते समय इनके माल में कितना कच्ची पत्तियां है उसका अनुमान लगाकर ही भुगतान किया जाता है।

4.विनाश विहीन विदोहन विधि:-

दोहन हेतु पौधे/पेड़ो का चयन करना चाहिए। पत्तियों के संग्रहण के लिए संग्रहण कर्ताओं को वृक्षो का आपस में बटँवारा कर लेना चाहिए।

(अ)तोड़ने की विधि: इसकी परिपक्व पत्तियाँ कच्चे माल का सही हिस्सा हैं और पत्तियों की कटाई तब शुरू होती है जब पौधे फूलना शुरू कर देते हैं यानी जून के अंत या जुलाई के पहले सप्ताह में पत्तियों को फूलों के साथ या तो हाथ से या चाकू से कांटा जा सकता है।

(ब)उत्पादन: प्रति हेक्टेयर औसतन 5-6 किलोग्राम सूखे पत्ते 3-4 साल पुराने पौधों से लगभग 10,000-15,000 किलोग्राम सूखे पत्ते प्रति हेक्टेयर प्राप्त किए जा सकते हैं। फसल को अच्छे प्रबंधन के तहत 10-15 साल तक उगाया जा सकता है।

(स)गुणवत्ता: पत्तियों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सीधी धूप से बचना चाहिए। कटी हुई पत्तियों को लगभग 7-8 दिनों तक साफ जमीन पर पतला फैलाकर पर्याप्त हवा देने के लिए उसे छाया में सूखाया जाता है। यदि इस कार्य के लिये सोलर टनेल उपलब्ध हो तो उसमें सुखाने से गुडमार की उपज का रंग एवं सुगंधि यथावत् रहती है तथा बाजार में इसका सही मूल्य मिलता है। इस प्रकार के प्राथमिक प्रसंस्करण जो प्रत्येक घर या स्व-सहायता समूह के स्तर पर किया जा सके उससे भी मूल्य वृद्धि होती है जो किसी-किसी लघुवनोपज में 25-30 प्रतिशत या इससे अधिक भी होती हैं।

गुणवत्ता बनाये रखने के लिये सही उपाय:-

- जड़े साफ़ और अच्छी तरह से सूखी होना चाहिए।
- कीट संक्रमण से मुक्त, जीवित कीटों, मृत कीटों, कीटों के टुकड़ो, फफूंदी, घुन, लार्वा, और क्रत्रिम रंगो से मुक्त होना चाहिए।
- फंगल विकास से मुक्त होना चाहिए
- विजातीय पदार्थ-अधिकतम 2 प्रतिशत

(द)पत्ती तोड़ने की सीमा: लगभग 30-40 दिन पुरानी पत्तियों को उपयोग के लिए तोड़ा जा सकता है, और तोड़ाई हर तीन महीने में की जा सकती है। हालांकि, एक साल की वृद्धि के बाद बेहतर उपज प्राप्त होती है।

(य)भंडारण: सूखे पत्तों को पलिथीन बैग में पैक करना होता है। सूखे पतों को ख़राब होने से बचने के लिए नमी की मात्रा 7-प्रतिशत से कम होनी चाहिए।

5.पुनरोत्पादन की विधि:- गुड़मार का पुनरोत्पादन बीज से आसानी से हो सकता है, परंतु बीज उत्पादन कम होने के कारण वन क्षेत्रों में पुनरोत्पादन कम हो रहा है। बीज बनते समय फली में शुष्क वातावरण के कारण नमी की मात्रा कम होती है इसलिये बीजों का सही बढ़त नहीं हो पाती है। ऐसे बीजों में अंकुरण क्षमता कम होती है ओर अधिकतर बीज अंकुरण विहीन पैदा होते है। एक अनुमान से यह पता चलता है कि कुल बीज का लगभग 25 प्रतिशत ही उपजा होता है। बाकी बीज अंकुरण के लायक नहीं होते है। इस प्रकार पौध तैयार करने के लिये बीजों को पानी में तैराकर भारी बीज की पहचान (पानी में नीचे बैठने वाली) कर उन्हें निकाल लेना चाहिए जिससे अनावश्यक बीज को न बोना पड़े।

6.प्रजाति का प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना :-

- बीज धारित पौधों को चिन्हांकित करना चाहिए।
- उचित देखभाल कर विनाशविहीन विदोहन सुनिश्चित करना चाहिए।
- नए बेलों (पौधे) जिनकी तने की मोटाई 02 सेमी.से कम हो, उनसे पत्तीयों का विदोहन नहीं करना चाहिए। जब पौधे 3-4 वर्ष पुराने हो तो ही विदोहन के लिए उचित होते हैं।
- निगरानी एवं मूल्यांकनः ऊपर बताये गए नियमों का पूर्ण रूप से पालन सुनिश्चित कराने के लिए एक स्थानीय समिति हो जिसमें हितधारक शामिल हों और इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन करें।

7.प्रसंस्करण की संभावनायें:- गुड़मार में पतले तने का भाग तथा पत्तियाँ वांछित औषाधीय कच्चा माल है। लकड़ी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक होने पर मान्य नहीं है यह काम जैसे सूखाना पत्ती एवं पतले तने को काटकर टुकडें बनाना और फिर पैकेजिंग करके प्रदाय करने से उन्हें अपेक्षित मूल्य वृद्धि मिल सकती है।

चित्र -सूखने के बाद नमूने

23. कालमेघ (ऐड्रोग्राफिस पेनीकुलाटा)

ऐड्रोग्राफिस पेनीकुलाटा स्थानीय भाषा कालमेघ नाम से जाना जाता है। इस पौधे का उपयोग आयुर्वेदिक और होम्योपैथिक में दवाई के रूप में किया जाता है। यह पौधा कृषि के लिए खाली जमीन और नमीयुक्त भूमि में होता है। इस जड़ी का स्वाद कडवा और धीमी गंध होती हैं। इस पौधे के हर भाग का उपयोग दवाई में किया जाता हैं। भारत में कालमेघ के रस का उपयोग रक्त शुद्धिकरण के लिये किया जाता हैं।

1. पौधे का आकार:- कालमेघ वार्षिक जड़ी बूटी है, यह मुख्यतः भारत के उत्तर पूर्वी मैदान भाग हिमाचल प्रदेश से आसाम और मिजोरम और दक्षिण भारत के समस्त भाग में पाया जाता है। इस पौधे के तने का गहरा हरे रंग का होता है पौधे की ऊचाईं 0.3-1.0 मीटर एवं 15-20 मि.मि. गोलाई होता है।
इसकी औषधीय गुण पूर्ण रूप से स्थापित और सर्वविदित हैं इसलिये इसको खेती के माध्यम से भी उगाया जाता हैं। यह माना जाता है कि, जिस मिटटी मे कोई अन्य पौधा आसानी से नहीं उगता है वहाँ भी यह आसानी से उग सकता है। यह पौधा ऐसी कठिन मृदा में भी आसानी से उग जाता हैं जिसमें प्रायः एल्यूमिनियम, तांबा, जिंक अधिक पाया जाता हैं। इस पौधे के विषम परिस्थितिओं में उग सकने के कारण इसका वितरण बड़े क्षेत्रों में पाया जाता हैं।

2. पौधे के उपयोगी भाग:- समस्त पौधे का उपयोग औषधी निर्माण के काम में लाया जाता हैं। अर्थात् दूसरे शब्दों में कालमेघ ''एक ऐसा औषधीय पौधा हैं जिसमें ज्वर तथा विभिन्न बैक्टीरिया वायरस तथा अन्य विषाक्त जीवाणुओं को समाप्त करने अथवा नियंत्रित करने के काम आता हैं।

3. विदोहन की प्रचलित विधियां:- इस पौधे का प्रत्येक भाग औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है, इसलिये जब इसे खेत में उगाया जाता है, तो फसल पकने के पश्चात् उसको जड़ समेत उखाड़कर उपयोग में लाया जाता है। इसके विपरीत वन क्षेत्रों में पाये जाने वाले पौधों कि भूमि की सतह से 10 से 15 सेमी.ऊँचाई पर काटना चाहिए। पौधों को यदि पूर्ण रूप से परिपक्व होने के पश्चात् काटा जाये तो उसके आगे बढ़ने की अधिक आशा होती है। क्योंकि ऐसे पके हुये पौधों के बीज जमीन पर गिरकर अंकुरित होकर नये पौध की शक्ल धारण कर लेते हैं, अतः यह एक संवहनीय विदोहन की तकनीक है।

4. विनाश विहीन विदोहन विधियां/नियम:-

विदोहन के लिये पौधे का चयनः- समान्यतः 60 से 100 सेमी. बड़े एवं विकसित पौधों का चयन विदोहन के लिये किया जाना चाहिये। लेकिन यह ध्यान में रहे कि ऐसे पौधे जिनमें पकी हुई फलीयाँ हो उन्हें पुनरोत्पादन एवं नयी फसल के लिये छोड़ देना चाहिए एवं फल वाली पौधों को कांटा जा सकता है।

संपूर्ण पौधे को 4-5 सेमी.लंबे टूकडो को कांटकर छांव में सूखा लेना चाहिये। इस बात का ध्यान रखा जाये कि पौधें को तेज धूप में सूखाने से न केवल उसका रंग बल्कि उसकी गुणवत्ता में भी कमी आ सकती है। इसलिये आवश्यक है की किसी चादर अथवा जूट के बोरे से बनी चादर पर घर के अंदर सुखाने से उनकी गुणवत्ता बनी रहती है और उनका रंग भी परिवर्तित नहीं होता व्यापारी रंग को देखकर मोल-भाव लगाते हैं। यदि छांये में सुखाया गया है, तो उसकी कीमत अधिक होगी, प्रकृतिक रंग को बनाये रखने के लिये आजकल सोलर ड्रायर का उपयोग किया जा रहा है यदि इस प्रकार की सुविधा सामुदायिक रूप से तैयार की जा सके तो ना केवल कालमेघ बल्कि अन्य उत्पादों यथा महूआ फूल, आंवला के टूकडे, एवं अन्य औषधी उत्पाद इसी प्रकार से सुखाया जाना चाहिये।

भंडारण-किसी हवादार कक्ष में करना चाहिये। भंडारण सुविधा/भवन को ऐसे जालीनुमा रैक बनाकर रखना चाहिये जिससे उनकी गुणवत्ता बनी रहे और भंडारण कक्ष के अंदर सफाई एवं रखरखाव का ध्यान रखा जा सके। भंडारण कक्ष में विभिन्न प्रजातियों को इस प्रकार रैक पर रखा जायें कि वे एक दूसरे से मिलें नहीं और उनका एक दूसरे पर आंवछित प्रभाव न पडें।

औषधियों पौधों का परिवहन:- गुणवत्ता बनाये रखने के लिये सुरक्षित परिवहन करना आवश्यक है। परिवहन के पूर्व उत्पाद को अच्छी तरह से सूखा लेना चाहिये। इसे वातावरण की गर्मी से बचाने के लिये रात को परिवहन करना उचित होता है। परिवहन के पूर्व जो पैकिंग हो वह थोडा ढीला रखा जाना चाहिये जिससे लंबी दूरी के परिवहन के दौरान वे टूकडों में टूट ना जाये।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- इसके बीज से पुनरोत्पादन आसानी से ऐसे पौधे का किया जाना चाहिए जो परिपक्व हो गए है या जिसमें बीज पक चुका हैं। इस प्रकार के परिपक्व पौधों को निकाला जाता हैं तो यह ध्यान रखना चाहिए कि वो अपने बीज जमीन पर गिरा चुका हैं।

6. प्राकृतिक पुनरोत्पादन सुनिश्चित करना:- निम्नलिखित कार्यो एवं सावधानी से पुनरोत्पादन संभव है-

- पुनरोत्पादन के लिये 40-50 प्रतिशत परिपक्व पौधे क्षेत्र में छोड़ देना चाहिये जिससे बीज गिरकर के अंकुरित हो जाये एवं आगे चलकर के पौध के रूप में विकसित हो जाये।
- अपरिपक्व पौधों का विदोहन न किया जाये क्योंकि यही आगे बढ़कर जब परिपक्व होंगे तब ओषधियों के लिये अथवा आने वाले समय में नये पौध के रूप में पुनरोत्पादन में सहायता करेंगे
- नये पौधों को संक्षरित करने के लिये उनके चारो तरफ मिट्टी की निदाई-गुडाई करने एवं भूमि एवं जल संरक्षण का कार्य करने से उन पौधों की बढ़त अधिक होती है।

वन क्षेत्रों में विदोहन को नियंत्रित करने के लिये संग्राहको को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये कि वे अपना संग्रहण बढ़ाने के लिये ऐसे पौधे जो अपरिपक्व हैं, या जो पुनरोत्पादन के लिये छोडें गये हैं उनका विदोहन न करें। समय-समय पर यदि प्रशिक्षित वन रक्षक एवं वनपाल संयुक्त वन प्रबंधन समितियों को ले जाकर वन भ्रमण करके सबके साथ विदोहन एवं पुनरोत्पादन की स्थिति का जायजा लेते रहे। इस कदम से संग्राहकों को संवहनीय निकासी एवं प्रबंधन के बारे में जानकारी होगी तथा वे इसमें भागीदार भी होंगे।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- कालमेंघ में पूरा पौधा काटकर संग्राहक घर ले आते हैं और फिर इसे धूप सूखाकर, बंडल बनाकर, क्षेत्र के व्यापारी को बेच देते है। व्यापारी उसे विभिन्न भाग में बाँटता है। पहले जड़ वाले हिस्से को कांटकर फेंक देता है। तने के मोटे हिस्से को काटकर (5-10 सेमी.लंबाई) टुकडों में अलग करते है और फिर उसका थ्रेसिंग करके उन्हें भूसा के रूप में (पाउडर) पैकिजिंग करके प्रसंस्करण ईकाईयों को प्रदाय करते है। तने के पतले भाग एवं पत्तियों को चित्र में दर्शाये अनुसार छोटे-छोट टुकडों मे पैकेजिंग करके प्रदाय करते है। इस प्रकार की प्रोसेसिंग संग्राहक अपने घर पर अथवा स्व-सहायता समूह के स्तर पर मिलकर बना कर, पैकेजिंग करके प्रदाय कर सकते है इससे उन्हें लगभग 30 प्रतिशत अधिक मूल्य मिल सकता है। स्व-सहायता समूह यह काम आसानी से कर सकते है।

24. कलीहारी (ग्लोरियोसा सुपरबा)

''यथा नामे तथा गुणे'' अर्थात जैसा नाम वैसा गुण। यह युक्ति इस पौधे के लिये भी लागू होता है। इसका वैज्ञानिक नाम ग्लोरियोसा सुपरबा अर्थात् महान एवं श्रेष्ठ है। जब यह फूल में होता है तो इसका रंग आग की लपटों की तरह से प्रतीत होता है यह प्रायः वर्षा ऋतु के पश्चात् ही फूल में आता है और उस समय इसका रंग आग की तरह से होना यह दर्शाता है कि कोई हवन कर रहा है। और उससे जो लौ निकलती है वह आँखो को सुख देती है। इसी कारण इस पौधे को अग्निशिखा के नाम से भी जाना जाता है। इसके दूसरे नाम अग्निज्वाला या अग्निमुखी भी हैं इसके कंद भूमिगत, श्वेत वर्ण के, मांसल, बेलनाकार, द्वि-विभाजित से V (व्ही)-आकार के होते हैं। यह एक महत्वपूर्ण औषधीय उपयोग में आता है जिससे गठिया, बाँझपन, खुजली हड्डी दर्द, अल्सर, कालरा टायफाईड, कुष्ठ रोग, केंसर, इत्यादि बहुत सी बीमारियों के इलाज में उपयोग में आता है। कुछ लोग इसे इसके बहुउपयोग के कारण इसे रामबाण दवा मानते है।

1. पौधे का आकारः- यह एक बेल एवं कभी-कभी सीधे पौधे के रूप में मिश्रित पतझड़ वाले वन क्षेत्रों में पाया जाता है। मध्यप्रदेश में इसका वितरण नमी एवं पतझड़ वाले सभी प्रकार के वनों में पाया जाता है। भारत में उत्तर पश्चिम हिमालय से लेकर आसाम और दक्षिणी प्रायदीप तक पाया जाता है। यह 4 मीटर तक लंबा पाया जाता है जिसके तने वार्षिक और रूयेंदार एवं शाखायें दूर-दूर निकलती है इनकी जड़ें बहुवर्षीय होती है जिससे तने के सूख जाने के बाद वर्ष दर वर्ष वर्षा ऋतु में अथवा उचित वातावरण पाकर परिस्फूटित होती हैं और इस तरह से यह पौधा बढ़ता रहता है।यह वन क्षैत्रों में सामान्य रूप से मिलता है। इसकी 27 से अधिक प्रजातियाँ है और इसलिये इस प्रजाति को मौके पर पहचानने में कठिनाई होती है। रिपोर्ट के अनुसार कोलचीसनि की 10 ग्राम पाउडर 25,000 रू. से अधिक में निर्यात किया जा रहा है, इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि यह पौधा कितना महत्वपूर्ण है।

2. पौधे का उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्वः- यह पौधा अपने दो रासायनिक अवयवों कोलचीसिन एवं ग्लोरियोसिन के कारण आयुर्वेद में प्रसिद्ध है यही नहीं इसका उपयोग अंग्रेजी दवाओं को बनाने में किया जा रहा है। इसके बीज में मुख्य रूप से यह रासायनिक पदार्थ पाया जाता है। बीज में पौधों के अन्य भागों की तुलना में 2-5 गुना अधिक रासायनिक पदार्थ पाया जाता है। इसलिये बहुत सारे रासायनिक पदार्थ इसके जड़ की गांठे एवं बीज में पाये जाते हैं। इसका कंद विषाकत होता है अतः सावधानी पूर्वक इसका प्रयोग करना चाहिये। इससे बनी दवाओं का उपयोग माँसपेशियों को आराम पहुँचाने में भी लिया जाता है। इसके पौधे के रस का उपयोग मलेरिया रोग की दवाई में भी किया जाता है।

उपयोगी भाग इसके उपयोगी भाग निम्नानुसार हैः-

कलिहारी जड़

कलिहारी कंद

कलिहारी पत्तियां

कलिहारी बीज

3. विदोहन की प्रचलित विधियाँः- पत्तियाँ, कंद एवं बीजों को संग्रह हेतु संग्रहकर्ता अपरिपक्व कंदों को भी निकाल लेते है जिससे पौधे नष्ट होने लगते है। इसी गैर-जिम्मेदार विदोहन एवं उपयोग के कारण यह रामबाण जैसी औषधीय प्रजाति की स्थिति संकटापन्न हो गई है। इसीलिये आई.यू.सी.एन (IUCN) द्वारा इसे लाल लिस्ट (Red List) में वर्गीकृत कर दिया गया है।
कच्चे एवं अविकसित कंद के निकल जाने से भूमि में इस पौधे के कोई अवशेष नहीं रह जाते हैं और इसलिये पौधा सदैव के लिये नष्ट हो जाता है, इसके बढ़ते उपयोग तथा अधिक पारिश्रमिक के प्रलोभन में अधिक से अधिक निकासी हो रही है।

4. विनाशविहीन विदोहन की विधियाँः-

(i) विदोहन के लिये वृक्षों का चयन करनाः- रोपण के 5-6 महीने बाद एवं जब पौधो का आवरण हल्के हरे रंग से गहरे हरे रंग में परिवर्तित हो जाता है तब विदोहन शुरू किया जाना चाहिये।

- कंदो की कटाई पौधा रोपण के 5-6 वर्ष बाद किया जाना चाहिये।
- केवल परिपक्व एवं पूर्ण विकसित जड़ वाले पौधे को ही निकाला जाये। यदि कंद में छोटे भाग हो तो उन्हें जमीन में दबा देना चाहिये जिससे वे पुनः नये पौधे का रूप धारण कर लें।

(ii) खेती करने के लिये उपयुक्त भूमि का चयनः- इसकी खेती के लिये लाल, बालुई दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। जहाँ तक संभव हो इसे सघन मिट्टी (कम्पैक्ट भूमि) में उगाना उचित नहीं होता है क्योंकि इससे पौधे की जड़ों का विकास अवरूद्व होता है तथा उपज कम होती है।

वन क्षैत्रों में पौधो का घनत्व बढ़ानाः- ऐसा कहा जाता है कि इसके निर्यात को अविंलब स्थगित करने से ही इसकी वनस्पतिक स्थिति में सुधार हो सकता है। यदि इसके अत्याधिक दोहन को नहीं रोका गया तो इसके शीघ्र लुप्त होने की संभावना बन जायेगी। औसतन लगभग 2000-2500 प्रति हैक्टेयर पौधे होने से उस क्षेत्र को इस प्रजाति के लिये पूर्ण घनत्व वाला क्षेत्र माना जा सकता है। इस पौध का विदोहन माँग के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। फिलहाल इसके बड़ते उपयोग के कारण यह प्रजाति संकटापन्न स्थिति में पहुँच चुकी है। मध्यप्रदेश के बहुत से वन क्षेत्रों (साल वनों में) यह बहुत कम पाया जाता है। इसका मुख्य कारण इसका विनाशयुक्त विदोहन है। आई.यु.सी.एन.(IUCN) ने इसे हाल ही में भारत के कुछ वन क्षेत्रों में लाल लिस्ट (Red List) में डाल दिया है। अब इसकी निकासी होने के अवसर कम होंगे ।
(iii) विदोहन के पश्चात् प्रबंधनः- कंद को निकालने के बाद उसे धोकर एवं साफ करते है। फिर कुछ दिन के लिये छाँया में कंद और बीज को सुखा देना चाहिये। यदि इसे सोलर टनल में सुखाया जाये तो उसके रंग और उसकी ग्रेडिंग में बढ़ोतरी हो सकती है। ऐसे कंद बाजार में अपेक्षाकृत अधिक मूल्य देते है। वन क्षेत्रों के अंदर प्रायः कंद निकलाते समय दूसरे पौधों को भी मिट्टी खुदाई के समय नुकसान होता है। इसलिये जिस पौधे का कंद निकाला गया है और उसमें कुछ अपरिपक्व कंद हैं तो उन्हें अच्छी तरह से मिट्टी

में दबा देना चाहिये। कुछ छोटे पौधों की जडे भी प्रभावित हो सकती हैं। अतः जिस क्षेत्र में निकासी हुई है वहां उखड़े हुये पौधों के स्थान की मिट्टी को समतल कर देना चाहिये। समय-समय पर निकासी के सीजन में बीटगार्ड द्वारा अपने सहायकों को लगाकर वन निरीक्षण करते रहे कि कौन सी प्रजाति के पौधे निकासी से छतिग्रस्त हुये है। सूखी पत्तियों को कांटते रहना चाहिये। वन भ्रमण के समय सहायक आवश्यकतानुसार उचित सहायता पौधों के चारों तरफ करते रहें तो वनो से प्रजातियों के नष्ट होने की संभावना नही रहेगी।

(iv) परिवहन एवं पैकेजिंग:- इसका परिवहन शाम को या सुबह किया जाना चाहिये। इसके कंद एवं बीजों को वायु रोधक बैग में पैक करते है। इससे लघुवनोपज के मूल्य वृद्धि की संभावनायें बढ़ जाती है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- इसमें मुख्यतः V (व्ही) आकार के कंद पुनरोत्पादन के लिये उपयोग किये जाते है। जुलाई एवं अगस्त माह पौधारोपण किया जाता है। प्लॉट पर बेड़ बना कर कंद को बोया जाता है। इसे नर्सरी में भी तैयार किया जाता है। इसमें फल आने का समय अक्टूबर-फरवरी तक होता है। अंकुरण क्षमता 70-80 प्रतिशत और पौध प्रतिशत सामान्यतः 20-25 प्रतिशत होता है। इसके रोपण के लिये कंद का उपयोग किया जाता है। इसके बीज को बौने के पहले लगभग 24 घंटे तक उन्हें गर्म पानी में भिगो देना चाहिये। ऐसे बीजों को बड़े-बड़े गमलों में (25-30 सेमी.व्यास) जिसमें कम्पोस्ट तथा आधे सड़े हुये खरपतवार को मिश्रित कर भर देना चाहिये। इसी में बार-बार मिट्टी को भूर-भूरा करके उपचारित बीज को बौना चाहिये। मिट्टी में बीज लगभग 2-25 सेमी. गहराई तक रहना चाहिये जिससे अंकुरण विलंबित न हो। ऐसे बीज बोए हुये गमले को किसी प्लास्टिक अथवा जालीदार लकड़ी के हल्के ढक्कन से ढक देना चाहिये इससे हवा भी मिलती है और बीज को चिडियों से कोई नुकसान नहीं होता है। अंकुरण के पश्चात् ढक्कन को हटा लेना चाहिये। आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई भी करते रहना चाहिये। बीज उगने में 1-3 माह तक लग सकता है।

6. प्रजाति के पुनरोत्पादन को सुनिश्चत करना:-

- बड़े पौधों को बीज धारक के रूप में चिन्हित किया जाना चाहिये।
- 5-6 वर्ष के पूर्व कंदो को नहीं निकालना चाहिये।
- प्राकृतिक अंकुरण विधि को अपनाना चाहिये जिससे पौधे नष्ट न होने पावें।

  सुझाये गये उपायों के लिये हितधाराकों की एक छोटी समिति का गठन किया जाए जो इसकी निगरानी एवं मूल्यांकन समय-समय पर करेगी।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- कलीहारी के बीज एवं जड़ों को सोलर टनल ड्रायर में सूखाकर हैमर मिल द्वारा इसका पाउडर बनाया जाता है फिर इसे पॉलीथिन में पैक किया जाता है। जिससे गुणवत्ता एवं मूल्य में वृद्धि की संभावनायें बढ़ जाती है।

चित्रः कलीहारी की छाल का पाउडर

25. वच (एकोरस कैलेमस)

वच पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया में होता है। यह आजकल हिमाचल प्रदेशों में भी लगभग 2,000 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। भारत में मणिपुर और नागालैंड की पहाड़ियों में और कश्मीर में झीलों व खेतों के किनारे यह ज्यादा मात्रा में मिलता है। वच को स्वीट फ्लेगके नाम से भी जाना जाता है एक तरह से यह एक जलीय एवं महक देने वाला पौधा है यह प्रायः पानी के नालों के किनारे उगता एवं बढ़ता रहता है। यह एक वार्षिक पौधा है जो ठंडे और एवं गर्म क्षेत्रों में समान रूप पानी के नालों किनारे पाया जाता है। इसकी ऊँचाई लगभग 2 मीटर तक, गंध देने वाला एवं तलवार जैसी पत्तीयों, पीले एवं हरे फूल एवं शाखायुक्त कंद वाला पौधा होता है। वनस्पतियों का मत है कि यह भारत वर्ष का पौधा है लेकिन आज की स्थिति में इसे यूरोप तथा दक्षिणी रूस, साइबेरिया, चीन जापान, वर्मा, श्रीलंका, आस्ट्रेलिया, कनाडा एवं अमेरिका में भी पाया जाता है।

1. पौधे का आकार :- यह पौधा 06-15 मीटर ऊँचा होता है एवं इसकी शाखाऐं 2-3 सेमी. चौड़ी और फूल छोटे घने एवं सफेद रंग के होते है। जमीन के अंदर रूयेंदार और कत्थाई रंग का यह एक स्थानीय पौधा है और लगभग 1800 मीटर की ऊँचाई तक पूरे भारत में पाया जाता है। वच की झाड़ीनुमा पौध बाग-बगीचों के लिलि के पौधे के समान होती है। इस पौधे की गंध तेज होती है। यह स्वाद में कड़वा होता है। वच का पौधा मूल रूप से यूरोपीय वनस्पति है। इसमें कई तरह के औषधीय गुण होते हैं। औषधि के रूप में इसकी जड़ से बने चूर्ण का इस्तेमाल किया जाता है। सैकड़ों साल पहले इसका प्रयोग मिस्र और ग्रीस में होता था। लंबे समय से भारत में भी इसका इस्तेमाल दवाओं के लिए किया जा रहा है। वच की कई प्रजातियां औषधि के रूप में उपयोग की जाती हैं।

2. उपयोगी भाग एवं सक्रिय तत्वः- इसके उपयोगी भाग जड़, पत्ती, एवं फूल है। वच का सूखाए गए जड़ वाला हिस्सा बाजारों में घोड़ा वच के नाम से बिकता है। इसकी बाल वच या पारसीक वच प्रमुख है। दवाओं के लिए वच की छह प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। वच के फायदे बुखार को कम करने, दिल और सांस संबंधी दिक्कतों को दूर करने सहित आवाज को बेहतर बनाने में भी ले सकते हैं।

3. विदोहन की प्रचलित विधियां : संग्राहक खरीदारों एवं व्यापारियों के प्रभाव में आकर प्रलोभन वश समय से पूर्व ही विदोहन करना शुरू करते है। जब कंद के बढ़ने का समय होता है तो उसे निकाल लेने से पौध की बढ़त कम या खत्म हो जाती है और पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है इसकी जड़ को सुखाने में 70 प्रतिशत सूख के बजाय 80-90 प्रतिशत तक सूख होती है इससे संग्राहको को न केवल उपज कम मिलती है बल्कि उन्हें कीमत भी कम मिलती है।

4. विनाशविहीन विदोहन की विधि:-

- दिसंबर के माह में पौधे के नीचे वाली पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती है जो उसके परिपक्वता की सूचक है। इसके कंद एवं जड़ को निकालने के पूर्व पानी को निकाल देना चाहिये।
- पानी सूख जाने के बाद भी इतनी नमी होनी चाहिये जिससे जड़ को बिना नुकसान पहुंचाये जमीन से निकाला जा सके। जब इसकी खेती होती है तब खेत में हल चलाकर जड़ों को उपर लाते है तथा मिट्टी झाड़कर जड़ों को इकट्ठा कर लेते है।
- खेती वाले क्षेत्र में पूरे फसल का विदोहन किया जा सकता है परंतु प्राकृतिक उत्पादन वाले क्षेत्र जैसे नाले के किनारे केवल स्वस्थ पौधों को निकालना चाहिये।
- छोटे पौधों को वहीं छोड़ देना चाहिये जिससे वे आगे चलकर के विकसित हो सकें एवं अगले वर्ष की फसल बन सकें। विदोहन किसी भी हाल में 60-70 प्रतिशत तक सीमित रखना चाहिये। शेष 30-40 प्रतिशत पौधों को अगली फसल के रूप में विकसित होने के लिये बिना विदोहन के छोड़ देना चाहिये।
- वन विभाग को चाहिये कि ऐसे छोड़े गये पौधों को खरीदारों के प्रलोभन के कारण संग्राहक इनका विदोहन न कर सकें। आवश्यकतानुसार समझा-बुझाकर तथा आवश्यकतानुसार प्रशासनिक उपायों से विदोहन को रोकने का प्रयास करें। यह वन क्षेत्रों के जैवविविधता को संरक्षित करने एवं संग्राहकों के हित में है।
- सही समय पर किये गये विदोहन एवं सूख के बाद भण्डारण करना चाहिये। भण्डारण के 1-2 वर्ष के भीतर इसका उपयोग पुनरोत्पादन तथा दवा बनाने के काम में कर लेना चाहिये। इससे अधिक अवधि में भण्डारण करने से उसकी अंकुरण क्षमता में अप्रत्याशित कमी मिल सकती है।

5. पुनरोत्पादन की विधि:- जड़ों का उपयोग यदि नर्सरी में पौधे बनाने के लिये किया जाता है तो उनमें अंकुरण बहुत कम हो जाता है (10 प्रतिशत से कम)। विदोहन किसी भी हाल में 60-70 प्रतिशत तक सीमित रखना चाहिये। शेष 30-40 प्रतिशत पौधों को अगली फसल के रूप में विकसित होने के लिये बिना विदोहन के छोड़ देना चाहिये। प्राकृतिक पुनरोत्पादन का पालन करना चाहिये जिससे की यह पौधे नष्ट न हो एवं इसे जड़ को छोटे-छोटे टुकडों में कांटकर इसे बोना चाहिये।

6. प्रजाति का प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करना :-

- प्राकृतिक पुनरोत्पादन को सुनिश्चित करने के लिये यह आवश्यक है कि कम से कम 40 प्रतिशत पौधों को मौके पर छोड़ दिया जाये।
- शेष छोड़े गये पौधों को अगली फसल के रूप में विकसित होने के लिये बिना विदोहन के रखना चाहिये।
- वन विभाग को देख-रेख करना चाहिये कि ऐसे छोड़े गये पौधों को खरीदारों के प्रलोभन के कारण संग्राहक इनका अविवेक पूर्ण विदोहन न कर सकें।

7. प्रसंस्करण की संभावनायें:- वच का जड़ वाला भाग को पानी से धोकर एवं साफ करके सोलर ड्रायर में सुखाया जाता है फिर उसका पाउडर बनाकर पॉलीथिन में पैक कर उपयोग के लिये तैयार किया जाता है। जिससे उसकी गुणवत्ता एवं मूल्यवृद्धि की संभावानाऐं बढ़ सकती है।

चित्र : वच की जड़ का पाउडर

संगीत

~~अत्याधिक एवं अनियंत्रित विदोहन से वन क्षेत्रों में ल~~

Green India Mission
Madhya Pradesh Forest Department

Additional PCCF, Green India Mission
Satpura Bhawan, Bhopal, Madhya Pradesh
Tel.: 0755 2674268, 9424790089
Email : apccfgim@mp.gov.in
https//www.mpforest.gov.in